ॐ

भक्ति

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

सम्पादकः—स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती

फाल्गुन सम्वत् १९८४

वार्षिक चन्दा २)

एक प्रतिका ।)

भक्ति के नियम।

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना गो रक्षण और उस के लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना। वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना। सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना। राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्वसाधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देनेवाले सहायक होंगे।

५. अश्लील और अपरिचित विज्ञापन नहीं लिए जावेंगे।

६. लेखों को प्रकाशित करना और और घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और विज्ञापन व पुस्तक सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्तिके नामसे होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची।

विषय	पृष्ठ
१. मंगलाचरण	१६९
प्रेम [ले० श्रीमती ब्रजकुमारी भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी।	१७२
३. सत्संग [ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी	१७५
४. ब्रह्मबिन्दु उपनिषद्	१८२
५. भक्तों के चरित्र [ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी]	१८३
६. मानव धर्म सार	१८८
७. सत्य [ले० श्रीमती सूरजदेवी]	१९४
११. भजन	१९८
१२. संसार समाचार	२००

ॐ

"कलौतु केवला भक्तिः।"

वार्षिक चन्दा २) एक प्रति का ।)

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली मासिक पत्रिका।

वर्ष २ } भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, फाल्गुन पूर्णिमा सं० १९८४। { अङ्क ६

॥ मंगलाचरणम् ॥

यः स्थूल सूक्ष्मः प्रकटः प्रकाशो, यः सर्व भूतो न च सर्वभूतः।
विश्वं यतश्चैतद् विश्व हेतो, नमस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ १ ॥

जो स्थूल सूक्ष्म प्रकट प्रकाश है, जो सर्व भूत है और सर्वभूत नहीं भी है, जिससे यह विश्व है और जो सब से परे होने से विश्वका हेतु भी नहीं है ऐसे पुरुषोत्तम भगवान को नमस्कार है ॥ १ ॥

यस्यावतार चरितानि विरञ्चि लोके, गायन्ति नारद मुखाभव पद्मजाद्याः॥
आनन्दजाश्रु परिषिक्त कुचाग्र सीमा, वागीश्वरी च तमहं शरणं प्रपद्ये ॥२

जिनके अवतार चरित्रों को लोक में नारद और ब्रह्मादि गाते हैं, जिनके गान करने से उत्पन्न हुए आनन्दाश्रु श्री सरस्वती जी के कुचाग्रों को भिगोते हैं, उन रामचन्द्र जी की शरण को मैं प्राप्त होती हूं (अहिल्या) ॥ २ ॥

नमोऽस्तुते राम तवांघ्रि पंकजं, श्रियाधृतं वक्षसि लालितं प्रियात् ।
आक्रान्तमेकेन जगत्त्रयं पुरा, ध्येयं मुनिन्द्रैरभिमान वर्जितः ॥ ३ ॥

हे राम ! जिन चरण कमलों को प्रीति से लक्ष्मी ने अपने वक्षःस्थल पर धारण किया है, जिन्होंने अकेले तीनों लोकों को व्याप्त किया है और जिनका अभिमान रहित मुनि ध्यान करते हैं उन आप के चरण कमलों को नमस्कार है ॥ ३ ॥

भवभय हरमेकं भानु कोटि प्रकाशं, धृतशरचापं कालमेघावभासम् ।
कनकरुचिरवस्त्रं रत्नवत्कुण्डलाढ्यम्, कमल विशदनेत्रं सानुजं राममीड़े ।४

संसार के एक मात्र भयहर्ता, कोटि सूर्यों के सदृश प्रकाश युक्त, धनुषबाण धारी, नील मेघ वत् प्रकाश स्वरूप, स्वर्णवत् पीत वस्त्र, रत्न जटित कुण्डल धारी और स्वच्छ कमल से नेत्रों वाले भ्रातृ सहित श्री रामचन्द्र जी को नमस्कार है ॥ ४ ॥

पादोदकेनाप्यभिषिञ्चमाना, उग्रैश्च पातैः परिलिप्त देहाः ।
ते यान्ति मुक्तिं परमेश्वरस्य, तस्यैव पादौ सततं नमामि ॥ ५ ॥

बड़े पापों से संयुक्त देह वाले जिनके चरणों के जल से सिंचित होकर मुक्ति को प्राप्त होते हैं उन भगवान् के चरणों को मैं सदैव नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥

नारायणं तं नरकाधि नाशनं, माया विहीनं सकलं गुणज्ञम् ।
यं ध्ययमानाः सुगतिं प्रयान्ति, तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥

नरक के नाश करने वाले, माया से रहित, सकल गुण निधान और जिनके ध्यान करने से भक्त जन श्रेष्ठ गति को पाते हैं उन वासुदेव की शरण को मैं प्राप्त होता हूं ॥ ६ ॥

राजन्तं द्विज मण्डले मख मुखे ब्रह्मश्रिया शोभितं,
दिव्येनापि सुतेजसा करमयं य चेन्द्रनीलोपमम् ।
देवानां हितकाम्यया सुतनुजं वैरोचनस्यापि तं,
याचन्तं मम दीयतां त्रिपदकं वन्दे प्रभुं वामनम् ॥ ७ ॥

जो द्विज मण्डल में शोभायमान थे, जो यज्ञ के मुख में आहुती श्री से शोभित थे, जो दिव्य तथा सुन्दर तेज युक्त हस्तों से शोभयमान थे, जो इन्द्र नीलमणि के सदृश कान्ति युक्त थे, जिन्होंने देवताओं के हितार्थ विरोचन के श्रेष्ठ पुत्र बलि से तीन पाद भूमि का दान मांगा, ऐसे वामन प्रभु को मैं नमस्कार करता हूं ॥ ७ ॥

तं दृष्टुं रविमण्डले मुनिगणैः सम्प्राप्तवन्तं दिवं,
चन्द्रार्कास्तमयान्तरे किलपदा संच्छादयन्तं तदा ।
तस्यैं वापि सुचक्रिणः सुरगणः प्रापुर्लयं साम्प्रतं,
काये विश्वविकोशकेतमतुलं नौमि प्रभो विक्रमम् ॥ ८ ॥

जिस भगवान् को आकाश में, सूर्य मण्डल में व्याप्त होते हुए मुनिगण देखनेको आये, जिन्होंने चन्द्रमा और सूर्य के अस्त होने के स्थान लोकालोक पर्वत के बीच को अपने चरणों से ढक लिया था, उन्हीं श्रेष्ठ चक्र धारी के शरीर में देवता लय हुए जो सब जगत् के अतुल कोश हैं ऐसे त्रिविक्रम भगवान् को मैं नमस्कार करता हूं ॥ ८ ॥

पशूनां पतिं पाप नाशं परेशं, गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम् ।
जटाजूट मध्ये स्फुरद्गांग वारिं, महादेवमेकं स्मरामि स्मरामि ॥ ९ ॥

प्राणियों के पति, पाप के नाश कर्त्ता, परमेश्वर, व्याघ्र चर्म धारी सबके प्रार्थनीय जिनकी जटा जूट के मध्य में गंगाजी स्फुरण कर रही हैं ऐसे एक महादेव का मैं स्मरण करता हूं ॥ ९ ॥

न भूमिर्न चापो न वन्हिर्न वायु, न चाकाश मास्ते न तन्द्रा न निन्द्रा ।
न ग्रीष्मो न शीतं न देशं न वेषो, न यस्यास्ति मूर्त्तिस्त्रिमूर्तिं तमीडे ॥ १० ॥

जिनके न भूमि है, न जल है, न अग्नि है, न वायु है, न आकाश है, न ग्रीष्म है, न शीत है, न देश है, न वेष है और न मूर्त्ति है ऐसे त्रिमूर्त्ति भगवान् की स्तुति करता हूं ॥ १० ॥

सुखं सुखान्तं सुखदं सुरेशं, ज्ञानार्णवं तं मुनियं सुरेशम् ।
सत्याश्रयं सत्य गुणोप विष्टं, तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ११ ॥

सुख रूप सुख की पराकाष्टा, सुख दाता, देवताओं का ईश्वर, ज्ञान समुद्र, मुनियों की रक्षा करने वाला, सत्य का आश्रय और सत्य गुण युक्त ऐसे भगवान् वासुदेव की शरण को प्राप्त होता हूं ॥ ११ ॥

प्रेम ।

(ले० श्रीमती वृज कुमारी देवी श्री-
भगवभक्ति आश्रम)

भगवान् के अनंत गुण हैं सर्वशक्तिमान, अंतर्यामी, सर्वव्यापक, जगन्नियंता इत्यादि जो कुछ भी कहें कम है। यदि शेषनाग अपनी समस्त जिह्वाओं से कल्पांत भगवान् के गुणों का गान करें तो प्रलय के अंत तक भी वह भगवान् के गुणोंका वर्णन करने में असमर्थ रहेगा, परन्तु भगवान् में ऐसा कौन गुण है जिसके कारण जगत् का अधम से अधम और पापीसे पापी जीव भी भगवान् की ओर झुकता है ? पाठक गण वह गुण 'प्रेम' है। यदि भगवान् में प्रेम न होता तो समस्त जीव भगवान् की ओर निहारते ही नहीं। सत्य-स्वरूप भगवान् से झूठे का क्या प्रयोजन होता और ज्ञान-स्वरूप से अज्ञानियों को क्या मतलब था ? इसी प्रकार पुण्य-पुञ्ज से पापियों को क्या परोपकार था ? यदि भगवान् अपनी शक्ति और ज्ञान के आधार पर ही जगत् का सञ्चालन करते तो हम उसे भगवान् न कहते। शक्ति और ज्ञान के आधार पर वह अपना काम तो चला लेता परन्तु मेरी समझ में तो जगत् के प्राणी भयभीत होकर उससे दूर ही भागने का प्रयत्न करते बिना प्रेम के भगवान् का यह जगत् कारागार होता और भगवान् उस कारागार के दरोगा होते।

भगवान् के अनंत गुण है परन्तु मैं तो प्रेम ही को सब से श्रेष्ठ समझती हूं। मैं तो भगवान् से यही चाहती हूं कि भगवान् मुझे चाहे कुछ भी न दें परन्तु प्रेम अवश्य प्रदान करें। यह ज्ञान और अज्ञान का झूठा झगड़ा है, वह तो प्रेम स्वरूप है, प्रेम ही उसका साधन है और प्रेम को ही वह प्राप्त होता है प्रेम ही से जगत् की रचना हुई है, प्रेम के आधार पर ही इस की स्थिति है और प्रेम की तरफ ही यह बढ़ रहा है। श्रुति कहती है।

आनंदाद्धेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।

निश्चय करके आनन्द से ही इन समस्त भूतों की उत्पत्ति है।

भगवान् के प्रेम की अजस्र धारा, अखण्ड रूप से प्रवाहित होकर और सृष्टि के अणु और परमाणुओं में व्याप्त होकर समस्त जगत् का संचालन कर रही है। इसी प्रेम ने मोह का रूप धारण करके चराचर की व्यवस्था कर रक्खी है। इसी सृष्टि में से प्रेम के भाग को निकाल दीजिए फिर समस्त ब्रह्माण्ड एक पल में छिन्न भिन्न होता दिखाई देगा। यह कहना बड़ा कठिन है कि प्रेम का स्वरूप क्या है ? यह तो गुण और अवगुण दोनों से ऊपर है फिर भला इसके गुण किस प्रकार वर्णन किए जावें। यह तो आत्मा के अनुभव का विषय है। क्या तुम नहीं देखते कि माता अपने अंधे, कोढ़ी और पागल लड़के से भी प्रेम करती है क्या यह गुणों के कारण ऐसा करती है ? नहीं यह तो स्वभाविक है। यह तो भगवान् का रूप है और भगवान् की शक्ति है।

प्रेम का विकाश

प्रश्न यह है कि प्रेम की जो अजस्र धारा समस्त ब्रह्माण्ड में बह रही है वह धारा वनस्पतियों

फूलों, पशु, पक्षियों और मनुष्यों में विकसित हो कर सबको प्रफुल्लित और आनन्दित कर रही है, मेरे हृदय में उस का विकाश किस प्रकार हो ? भगवान् का वह अनन्त प्रेम जो समस्त जगत् को अपनी ओर आकर्षित करता हुआ, पृथ्वी के पदार्थों को निर्मल व सुन्दर बनाता हुआ अपने में लीन करने के प्रयत्न में लगा है, मेरे हृदय में कब और किस प्रकार पूर्ण रूपसे विकसित होगा ? गुण और अवगुण का ख्याल न करके मैं अकारण ही सब प्राणी मात्रसे प्रेम करने लगूं इसके लिए कौनसा साधन है ? अब तो मेरी दृष्टि में यह दोष है कि मैं श्याम वर्ण, सुन्दर और कोमल शरीर-स्पर्श से द्वेष करती हूं । मेरा वह भाव किस भान्ति होगा कि मैं उसको अपना आत्मा समझूं और उससे प्रेम करके प्रसन्न हूं । मेरी बुद्धि में जीवों में प्रेम के विकाश की तीन अवस्थाएं हैं । प्रथम अवस्था मोह की है । मोह का नाम अज्ञान है । माता अपने बालक को यह समझती है कि यह मेरा है परन्तु उसको इस बात का ज्ञान नहीं है कि इसमें मेरा पना क्या है ? वह उन संस्कारों और सम्बन्धों की कड़ियों से बिलकुल अनभिज्ञ है, जिन्होंने उसको बलात्कार उसका बना रक्खा है । यह भगवान् की माया से प्रेरित, अज्ञान-जनित प्रेम है जो भगवान ने विश्व को चलाने के लिए प्रत्येक प्राणी के पीछे लगा रखा है । यह धोखा है, अज्ञान है, भ्रम है, परन्तु इसमें भी आनन्द है क्योंकि इस में ममत्व की मात्रा बहुत अधिक है और प्रत्यक्ष स्वार्थ सिद्धि की बात न होने से प्रेमी को अनन्द आता है । इस प्रेम में फल की आशा बहुत कम है यह प्रेम तो अपना अंश वा भाग समझ कर ही किया जाता है । बालक को भी अपनी माता से प्रेम करने में बड़ा आनन्द होता है । वह समझता है मेरी माता मेरे लिए सब कुछ देती है । उसका अपनी माता पर अधिकार होता है । माता की क्या मजाल है जो अपने पुत्र की नाराजगी को सहन कर सके ? माता अपने पुत्र की प्रसन्नता के लिये सैंकड़ों तरह के कष्ट सहती है और हजारों भान्तिके नाच नाचती है और यह सब कुछ करती हुई अपने को सुखी और सौभाग्यवती समझती है । इस से आगे चलकर जब मनुष्य का संसारिक ज्ञान बढ़ता है तो प्रेम की मात्रा स्वार्थ में आ जाती है । यदि कोई हम से प्रेम करता है या हमारा भला करता है तो बदले में हम भी प्रेम करते हैं । यह वणिक वृत्ति है, यह लेने का देना है । इस प्रेम में आनन्द की मात्रा बहुत कम है परन्तु है अवश्य क्योंकि यहां भी न्याय की वृत्ति काम करती है ।

मेरा पुत्र, मेरा मित्र, मेरी जाति, मेरा देश यह सब माया की दीवारें हैं । यह माया है, माया नाम अज्ञान मैल और धोखे का है । इस में आनन्द कहां, यह तो सुख और दुःख का संमिश्रण है । प्रेम की निर्मल धारा इस में मिल कर गन्दी हो रही है । यद्यपि इसी धार ने इस समस्त विश्व को धारण किया हुआ है परन्तु यह प्रत्यक्ष नहीं होती है और जब तक हम इस का साक्षात्कार नहीं कर लेंगे, इसी प्रकार आशा और निराशा की बेड़ियों से जकड़े हुये सुख और दुःख को अनुभव करते रहेंगे । इस माया से मुंह मोड़ कर एकाग्रचित हो उस प्रेमी से, जिसने समस्त ब्रह्माण्डों को मोहित कर रक्खा है ध्यान लगाने ही से उस प्रेम का विकाश होगा । परन्तु प्रश्न यह है कि इस माया से पार किस भान्ति जाया जावे ? हमारी मायावी बुद्धि तो फूल की रंग की सुन्दरता

को देख कर उस फूल के ही गुण वर्णन करने में व्यस्त हो जाती है, हमारी वह सूक्ष्म दृष्टि किस भान्ति हो कि सदैव उस प्रीतम पर दृष्टि रहे जिससे समस्त विश्व प्रेम रूप बन रहा है। कहते हैं कि वह विश्व के अणु २ में व्याप्त है। व्याप्त क्या है प्रेमी जन कहते हैं कि केवल वही है और उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। विज्ञान विशारद तत्ववेत्ता भी इसी परिणाम पर पहुंचे हैं कि सब परिमाणुओं में एक शक्ति है जो समस्त विश्व में व्यापक हो कर समस्त कार्य को चला रही है। उसका अनुभव, साक्षात्कार अथवा दर्शन हम को किस प्रकार हो, यही हमारे मानवी जीवन का उद्देश है। इस प्रेम के पूर्णतया विकसित होने का नाम ही आनन्द है यही प्रेम की धर्मसीमा है।

आप लोगों ने देखा होगा कि माता अपने बालक से प्रेम करके उसके प्रेमका विकाश करती है और उस के पीछे आचार्य उस प्रेम को उज्वल बना देता है। आचार्य के पास जाकर वह प्रेम चमक उठता है। जो माता क्रूर होती है, जिस में क्रोध होता है, शुष्क होती है उस के बालकों में प्रेम की मात्रा विकसित नहीं होती, वह भी क्रूर स्वभाव के और मनहूस होते हैं। साथ ही यह भी देखा होगा कि माता में प्रेम है और पिता में प्रेम नहीं है तो बालकों में प्रेम की मात्रा मध्यम होती है। वह क्रूर तो नहीं होते परन्तु प्रसन्न वदन व प्रसन्न चित्त नहीं होते। फिर आप लोगों ने यह भी अनुभव किया होगा कि जो बालक क्रूर, क्रोधी व घमण्डी अध्यापकों के पास पढ़ते हैं, उनके स्वभाव भी न्यूनाधिक उसी प्रकार के पड़ जाते हैं। हमने ऐसे भी अध्यापकों को देखा है जिन का यह विश्वास है कि बिना दण्ड दिए बालक का पढ़ना असम्भव है, इस सम्बन्ध में जब उन से वार्तालाप की गयी तो यही मालूम हुआ कि यह ऐसे अध्यापकों से पढ़े हैं, इस लिए इन में प्रेम का विकाश ही नहीं हुआ। इस से आप मेरा अभिप्राय समझ गए होंगे। प्रेम तो प्रत्येक व्यक्ति में वर्त्तमान है। वह तो भगवान् का रूप है। प्रेम के बिना तो जीवन क्षण भर भी नहीं रह सकता परन्तु इसका विकाश उसी व्यक्ति में होता है जो प्रेमीके सम्बन्ध में आता है। अग्नि के बिना अग्नि प्रदीप्त नहीं होती। भगवान् के उस अनुपम प्रेम को जगाने के लिए कि जिस के जाग्रत होने पर समस्त विश्व प्रेम-रूप दिखाई देता है, ऐसे प्रेमी की आवश्यकता है जो उस प्रेममें निमग्न हो। जिसने स्वयं उस प्रेम को प्राप्त कर लिया है और जो इस रहस्य व विधि को जानता हो। यह प्रेम लेने से नहीं मिलता यह तो देने वाला आप ही देता है। सहजो बाई ने कहा है:-

ऊंचे उज्वल भाग सों, आप मिले गुरुदेव।
प्रेम दिया नन्हा किया, पूरण पायो भेव॥

तुम चाहे उसको गुरु कहो, या भगवानका रूप कहो; कुछ भी नाम रखो परन्तु प्रेम तो ऐसे ही व्यक्ति से मिलेगा। प्रेम बुद्धि का विषय नहीं है। वह पुस्तकों में बन्द नहीं है। विद्या और तर्क से प्रेम की प्राप्ति नहीं होती। जिस प्रकार समुद्र से बादल बनते हैं उसी तरह जो व्यक्ति प्रेम का अथाह समुद्र है उसी से प्रेम की प्राप्ति होती है! यह गुण, अवगुण, हानि लाभ, सत्य और झूठ कर्म और अकर्म सब से ऊपर है। कहा है:-

जहाँ बाज बासा करे, पक्षी रहे न और।
जिस घट प्रेम अघट भया, नहीं कर्मकी डौर॥

प्रेम दिवाने जो भये, मन भयो चकना चूर ।
छकें रहें घूमत रहें, सहजो देख हजूर ॥

परन्तु अब प्रश्न यह है कि जिस प्रेम में आदमी मग्न व मतवाला हो जाय वह प्रेम किस तरह मिले ? क्या उस के लिए कुछ देना पड़ता है ? उत्तर में कहना पड़ता है कि समस्त मायावी जगत को तिलांजली देनी पड़ती है । कबीर जी कहते हैं-

प्रेम न बाड़ी ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा प्रजा जो रुचे, शीश दिए ले जाय ॥

अपने आप को मिटा देने पर ही उस प्रीतम के दर्शन होते हैं जो परमाणु में छिपा हुआ है । जिस तरह हनुमान जी ने अपना आपा राम के चरणों में न्योछावर करके उस प्रेम को पाया और गोपियों ने अपना सर्वस्व भगवान् कृष्ण को समर्पण करके उस प्रेम की प्राप्ति की उसी तरह हम भी कर सकते हैं, परन्तु ध्यान रहे यह सब हुआ भगवान् राम और कृष्ण की कृपा से । इसी तरह प्रेमी की कृपा से ही प्रेम का विकाश होता है । अब प्रेम के विषय में कुछ दोहे लिखकर लेखनी को विश्राम देती हूं ।

वह दिन समझो अकार्थी, सङ्गत भई न सन्त ।
प्रेम बिना पशु जीवना, भक्ति बिना भगवन्त ॥
प्रेम भाव इक चाहिए, भेष अनेक बनाय ।
भावे गृह में वास कर भावे वन में जाय ॥
प्रेम पियाला भर पिया, राच रहे गुरु ज्ञान ।
दिया नगाड़ा प्रेम का, लाल पड़े मैदान ॥
राता माता नाम का, पीया प्रेम अघाय ।
मतवाला दीदार का, माँगे मुक्ति बलाय ॥
योगी जङ्गम सेवड़ा, सन्यासी दुरवेश ।
बिना प्रेम पहुंचे नहीं, दुर्लभ सत्गुरु देश ॥
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं ।
प्रेम गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं ॥

सत्संग ।

अघौघं प्राचीनं विघटयति पुण्यं प्रथयति,
प्रसूते सद्बुद्धिं नवनवकलां पल्लवयति ।
हरत्यज्ञानान्ध्यं दिशति परमानन्द पदवीम्,
सतां संगः कल्पद्रुम इव न किं किं वितनुते ॥

ठकगण ! कवि ने इस श्लोक में सत्संग का कितना गम्भीर महात्म्य भरा है । सत्पुरुषों का समागम कल्पवृक्ष के सदृश पुरुषों को सर्व पदार्थ देता है । वह पाप के पुराने पुञ्ज का नाश कर देता है । एक जगह लिखा है कि:-

गंगा पापं शशि तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा ।
पापं तापं च दैन्यं च हरेत्साधु समागमः ॥

गंगा जी मनुष्य के पापों को नष्ट करती है, चन्द्रमा शरीर के समस्त तापों का शमन करता है और दीनताको कल्पवृक्ष हर लेता है, परन्तु केवल साधु समागम ही एक ऐसी वस्तु है जो पाप, ताप और दीनता तीनों का अपहरण करता है । महात्माओं का संग मनुष्य के पुण्य को विस्तृत करता है । जिन पुरुषों ने सत्पुरुषों की सेवा की है उन ही पुरुषों की कीर्ति इस संसार में विख्यात है । सत्संग के पुण्य के

प्रभाव का क्या अन्त है। इस के पुण्य के प्रभाव से क्या नहीं हो सकता है ? अपितु सब कुछ साध्य है। सत्संग का पुण्य सहस्र अश्वमेधों और सहस्रों वर्ष के पुण्य से भी अधिक होता है। इस पर पाठकों के ज्ञानार्थ महामुनि विश्वामित्र जी की कथा लिखते हैं।

एक समय महाराज वशिष्ठ जी विश्वामित्र जी के आश्रम में गए। विश्वामित्र जी ने वसिष्ठ जी का बहुत आदर सत्कार किया। उनको आए देखकर तुरंत आसन से उठ कर स्वागत किया। नाना प्रकार के पुष्प, अनकल इत्यादिकों से उनकी पूजा की और पश्चात् उनको भोजन कराया। इस के अनन्तर दक्षिणा का अवसर आया तो विश्वामित्र जी ने एक सहस्र वर्ष की तपस्या का फल उनको अर्पण किया। उसे लेकर वशिष्ठ जी अपने आश्रम में चले गए। किसी समय दैवयोग से घूमते २ विश्वामित्र जी भी वसिष्ठ जी के आश्रम में पहुंचे। वसिष्ठजी नेभी उनका यथोचित आदर सत्कार करके भोजन कराया और दक्षिणा में घड़ीभर सत्सङ्ग का फल अर्पण किया। यह देख कर विश्वामित्र जी आग बबूला हो गए और अपने मन में विचार करने लगे कि क्या इन्होंने मेरी एक सहस्र वर्षकी तपस्या का फल घड़ीभर सत्सङ्ग समझा है। वशिष्ठ जी उनकी त्योरी चढ़ी हुई देख कर कहने लगे " विश्वामित्र जी ! आप को क्रोध नहीं करना चाहिये। आप सत्सङ्ग के पुण्य के प्रभाव को नहीं जानते। चलिए किसी महान् पुरुष के पास निर्णय करावेंगे। ऐसा कह कर वह सत्यलोक में ब्रह्मा जी के पास गए। ब्रह्मा जी सब मर्म को जान गए। और यह सोच कर कि यह दोनों ब्राह्मण समान पराक्रमी हैं, यदि इनकी बात का मैं उचित भी उत्तर दूंगा तो एक तो अवश्य क्रुद्ध होगा और सम्भव है कि क्रोधित होकर शाप भी दे दे। अतः उन्होंने "विष्णु भगवान् ही आप के प्रश्न का समुचित उत्तर देंगे" यह कह कर टाल बताई। वह दोनों मुनि वहांसे बैकुण्ठको लोक गए। वहां जा कर विष्णु भगवान् से न्याय करने को कहा। विष्णु भगवान् ने भी ब्रह्मा की भान्ति सोच कर कहा कि इसका उत्तर तो निरन्तर समाधि में रहने वाले महादेव जी ही दे सकते हैं। यह सुन कर दोनों ऋषि कैलास को गए। उस समय महादेव जी समाधि लगाने वाले थे उन्होंने कहा कि " हे ऋषिवरो ! मेरी समाधि का समय है आप शेषराज जी के पास जाइए। यह सुनकर वह दोनों ऋषि शेषराज जी के पास पहुंचे। शेषराज ने दोनों ऋषियों को आदर पूर्वक बैठा कर आने का कारण पूछा। उन्होंने कहा कि शिव जी ने हम को आप के पास न्याय कराने को भेजा है कि " एक सहस्र वर्ष की तपस्याका पुण्य और एक घड़ी सत्संग का पुण्य इन दोनोंमें किसका अधिक पुण्यप्रताप है " शेष जी ने ध्यान पूर्वक सोचने के अनन्तर विश्वामित्र जी से कहा कि हे मुनि जी ! आप कृपा करके मेरे शिर से पृथिवी के भार को थोड़ी देर के लिए अपने सिरपर रखलें जिससे मैं आपको इन प्रश्नों को भली प्रकार समझा सकूं। विश्वामित्र ने कहा कि हे महाराज ! हमारे अन्दर इतना बल कहां ! तो शेषजी ने कहा कि अच्छा अपने सहस्र वर्ष की तपस्या के प्रभावसे इस पृथिवी को एक बालिस्त ऊपर कर दो। विश्वामित्र जी ने एक सहस्र वर्ष की तपस्या का फल लगा दिया परन्तु पृथिवी टससे मस न हुई। तदनन्तर शेष जी ने वशिष्ठ जी से कहा तो वशिष्ठ जी ने एक घड़ी सत्सङ्ग के प्रभाव से पृथिवी को उठा लिया।

विश्वामित्र जी कहने लगे कि हे शेष जी ! अब आप हमारे प्रश्न का शीघ्र उत्तर दीजिए। तब शेषजी ने हंस कर कहा कि आप के प्रश्न का उत्तर तो हम ने दे दिया। इस वसुन्धरा ने यह प्रत्यक्ष कर दिखाया कि एक सहस्र वर्ष की तपस्या का प्रभाव एक घड़ी के सत्संग के पुण्य के प्रभाव के समक्ष में कुछ भी मूल्य नहीं रखता।

पाठको ! इस से सिद्ध होगया कि सत्सङ्ग का पुण्य सब से बढ़कर होता है। महान् पुरुषों का संग सद्बुद्धि का दाता है। कैसा ही कुटिल से कुटिल प्राणी क्यों न हो महात्माओं के संग से उसकी बुद्धि स्वच्छ होती है। मनुष्यों की तो बात जाने दीजिये जिस भूमि में महात्माओं का पदार्पण हो जाता है वह भूमि भी पवित्र हो जाती है। इसको जानने के लिये पाठकों को अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। आप इस आश्रम को ही देखिये। दश वर्ष पहिले जिस भूमि के पास से रात्रि को मनुष्य चलते हुये डरा करते थे, जिस भूमि में वृक्षों की तो कौन कहे घास भी उत्पन्न नहीं होती थी, जिस भूमि के आस पास स्वादिष्ट जल का भी अभाव था ऐसी ऊपर भूमि में भी जब से श्रीपूज्य महाराज जी का पदार्पण हुआ है जंगल में मंगल होगये हैं वहां उनके पुण्य प्रताप से भय तो दूर रहा स्वयं ही स्थान को देखने मात्र से ही प्रत्येक प्राणी का मन हरित हो उठता है। उसी भूमि में अब कई सहस्रों वृक्ष लह लहा रहे हैं, पांच छह बहुत स्वादिष्ट जलके कूप विद्यमान हैं बीच में एक बृहत् सरोवर शोभा पाता है और विद्याप्राप्त्यर्थ तीन पाठशालाऐं है। पाठक! यह सब सत्पुरुषों के समागम का ही फल है जब भूमि भी महात्माओं के संग से ऐसी उन्नत अवस्था को प्राप्त कर सकती है तो नीच से नीच भी यदि महात्माओं का संग करें तो उनको भी अवश्य परम पद की प्राप्ति होगी इस में कोई संशय नहीं है।

मलयाचल गन्धेन स्विन्धनञ्चन्दनायते।
तथा सज्जन संगेन दुर्जनः सज्जनायते॥

जिस प्रकार से मलयाचल के संग से लकड़ी भी चन्दन सदृश गन्ध वाली हो जाती है इसी प्रकार सज्जन के संग से दुर्जन भी सज्जन हो जाता है।

महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नति कारकः।

महा पुरुषों का सङ्ग किसकी उन्नति नहीं करता है अर्थात् उनके संग से तो पापियों की बुद्धि भी श्रेष्ठ हो जाती है।

किसी नगर में एक चोर रहता था वह अपने काम में बहुत दक्ष था। उसने चोरी करके विपुल धन का संग्रह किया। वह यह जानता था कि शास्त्रों के श्रवण से और सत्पुरुषों के संग से कुटिल मनुष्य भी धर्मात्मा हो जाता है अतः अपने लड़कों को भी कथा वार्ता नहीं सुनने देता था। वह एक बार रोगग्रस्त हुवा और जब जीवनाशा न रही तब उसने सब लड़कों को बुलाकर कहा कि "तुम सब कभी भी कथा पुराण सुनने के लिये नहीं जाना, और न ही कभी किसी सन्त महन्त के पास बैठना। यही हमारे पुरखों की आज्ञा है"

उनके मरने के पश्चात् सब लड़के उसके कथनानुसार बर्ताव करने लगे। जहां कहीं कथा वार्ता होती वहां से वह दूर भाग जाते। एक समय

एक लड़का किसी प्रयोजन वश बाहर जाने लगा। मार्ग में मन्दिर पड़ता था वहां हरि कथा हो रही थी, इधर उधर से और कोई मार्ग न था। अतः विवश होकर कान में उंगली देकर उधर से ही जाने का विचार किया। जिस समय वह मन्दिर के पास पहुंचा तो उसके पैर में बहुत जोर से एक शूल लग गई। उसने शूल निकालने के लिये कानसे उंगली निकाली इस अवसर में उसके कान में इतना शब्द पड़गया कि "देवताओं के छाया नहीं होती" उसने इस बात को बहुतही भुलाना चाहा परन्तु भूल न सका। एक बार वही चोर चोरी करने निकला। उसने राज महल में प्रवेश करके बहुत सारे जवाहिरात और अमूल्य रत्न चुराये। वह उनको उठा कर ले जाने में असमर्थ हुवा। दैवयोग से मार्ग में उसको एक ऊंट मिल गया उस ऊंट पर उसने सब धनको रख लिया और अपने घर पर पहुंच कर ऊंट को तो इस हेतु से मार कर भूमि में गाड़ दिया कि कहीं चोरी का पता न चल जावे और सब धन को ठिकाने सिर रख दिया।

प्रातः काल राजा ने राज महल में चोरी के समाचार सुने तब मन में विचारा कि जब मेरे यहां ही चोरी हो गई तो प्रजा का तो क्या हाल होगा! चाहे जो हो इस चोर का अवश्य पता लगाना चाहिये। यह सोच कर उसने सारे नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो कोई चार दिन के भीतर चोर का पता लगावेगा उसको चोरी में गये हुए माल से द्विगुणा माल इनाम में मिलेगा। तब एक वेश्या ने चोर के पता लगाने की ठानी। उसने एक कंगाल भिखारिन का वेश बना, पहिने पुराने कपड़े पहिन, हाथ में इकतारा लेकर भजन गाती हुई दीन दुःखिया की भान्ति चोरों की गली में घूमने लगी और सबसे कहती थी कि मैं अत्यन्त दीना हूं मेरे एक ही लड़का है उसको मसान रोग लगा है वह तड़फ रहा है यदि किसी के यहां ऊंट का मांस मिल जाय तो मेरा इकलौता बेटा जीवित रह सकता है। उसकी दीन वाणी को सुन कर चोर की स्त्री का मन द्रवीभूत होगया और उसने थोड़ा सा ऊंट का मांस लाकर देदिया। उस भिखारिन ने चलते समय रोली का छापा उस घर के द्वार पर लगा दिया और उन को समझा दिया कि मैं महामाया की उपासिका हूं माता जी तुम पर लहर करेंगी इसी हेतु यह छापा लगा दिया है। जब चोर अपने घर पर आया तो उसने छापा देख कर कहा कि अवश्य कुछ न कुछ दाल में काला है। घर की स्त्रियों से पूछा तो उन्होंने बतला दिया कि एक भिखारिनि अपने बच्चे के लिये ऊंट का मांस लेने आई थी वह यह मंगल छाप लगा गई है। चोर ने तुरन्त उसको पुतवा दिया और रात को और दस बारह घरों पर वैसाही छापा लगवा दिया। दूसरे दिन वेश्या वेष बदल कर उस जगह को देखने आई तो उसने दस बारह घरों पर छापा लगा देखा और जिस घर पर छापा लगाया था वह पोता हुवा था। वह तुरन्त समझ गई कि जिसने छापा मिटाया है अवश्य वही चोर है। वह अपने घर लौट आई। रात्रि को उस वेश्या ने देवी का सांग बनाया। हाथ में खंजर और खप्पर लेकर भैंसे पर सवार होकर उसी चोर के द्वार पर पहुंची चोर ने बाहर निकल कर महामाया को घर आई जान प्रणाम किया तब देवी ने क्रोध भरे शब्दों में कहा कि मैं अभी तेरा शिर काटे देती हूं। चार दिन हो गये अब तक तुमने मेरा बलिदान

नहीं किया है उसका क्या कारण है। देवी के ऐसे कठोर वचन सुनकर चोर कांपने लगा और क्षमा मांगते हुए कहा कि अभी तक सारा माल ज्यों का त्यों रक्खा है। हम आपका बलिदान करके पीछे धन के हाथ लगावेंगे। देवी ने प्रसन्न होकर कहा कि ठीक है भूलना मत। ऐसा कह कर जब वह चलने लगी तो उसकी परछाईं भूमि पर पड़ी। यह देख कर चोरको मन्दिर उसमें सुना हुवा वाक्य याद आया और विचार ने लगा कि यह तो देवी नहीं देवताओं के तो छाया ही नहीं होती। यह तो कोई छद्म वेषधारी है। कदाचित् तेरा भण्डा फोड़ने के ही अर्थ यह जाल रचा गया हो। इतना सोच कर उस वेश्या को पकड़ कर बन्द कर दिया।

वेश्या की राजा के सन्मुख की हुई प्रतिज्ञा की अवधी समाप्त होगई परन्तु चोर का पता न लगा राजा ने पुनः डोंडी पिटवाई कि जो कोई चोर को पकड़ करलादेगा उसको मैं अपनी कन्या और आधा राज्य देदूंगा। दूसरे दिन स्वयं चोर राज सभा में उपस्थित हो गया और कहने लगा कि महाराज। वह आपका चोर मैं ही हूं अब आप अपने वचन का पालन कीजिये। राजा ने यह निश्चय करके कि वास्तव में यही चोर है उससे कहा कि ले यह कन्या और आधा राज्य। यह सुन कर चोर ने अपने मनमें विचार किया कि कहां तो चोर के कोड़े पड़ते थे और कहां आज राज्य वैभव की प्राप्ति! अहो! यह सब मन्दिर के आगे एक ही दिन, एक ही वार, और वह भी एक ही शब्द, सो भी अनिच्छा से सत्य वचन सुनने का फल है। अहो! यदि यह सत्संग निरन्तर हो तो मेरा इस लोक और परलोक से अवश्य उद्धार हो जाय फिर राजा से कहने लगा कि महाराज! मैं यह राज वैभव और राजकन्या लेकर क्या करूंगा? हरे हरे! इनको लेकर तो अपने हाथ में आये हुए अमूल्य रत्नको खोता हूं। मुझे इस राज्य वैभव का सुखनहीं चाहिए। मैं तो सत्पुरुषों का सत्संग करके परमपद को प्राप्त करूंगा।

पाठक! देखा एक ही क्षण के सत्संग का कैसा प्रभाव हुवा कि परम्परा से जिन के कुल में चौर्य कर्म चला आता था उनके भी अन्तःकरण को एकही शब्द ने शुद्ध कर दिया। किसी ने सत्य ही कहा है कि:

"सत्सङ्ग सबन को सार"

यह सत्सङ्ग श्री हरि को प्रसन्न करने का मुख्य साधन है, इसी से ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस सत्सङ्ग के महात्म्य को कथन करने की शक्ति किस में है। यह सत्सङ्ग नई २ कलाओं को विस्तृत करता है और अज्ञान रूपी अन्धकार को मिटाता है तथा परमानन्द की पदवी को देता है। तुलसीदास जी कहते हैं

मुनि समुझहिं जन मुदितमन,
　　मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारिफल अछततनु,
　　साधु समाज प्रयाग॥

जो मनुष्य प्रसन्न चित्त से साधु समाज रूपी प्रयाग का महात्म्य सुनते हैं और उन में अत्यन्त प्रीति से स्नान करते हैं वह इसी शरीर से धर्मार्थ काम मोक्ष को पाते हैं।

मज्जन फल देखिय तत काला।
काक होहिं पिक बकहुं मराला॥

सत्संग के प्रताप से काक कोकिल और बगुले हंस हो जाते हैं। वाल्मीकि ऋषि पहिले व्याधे थे। वह मनुष्यों को मार पीट कर अपने कुटुम्ब का भरण पोषण करते थे। एक बार उन को एक ऋषि मिले वह उन्हें लूटने को तत्पर हुए तब उन्होंने कहा कि तू जो यह पाप कर्म करके अपने कुटुम्बका भरण पोषण करता है वह तेरा कुटम्ब खाने का ही साथी है अथवा जो तू पाप करता उसके फल भोगने का भी? वाल्मीकि ने अपने कुटम्बियों से पूछा तो उन्होंने कहा कि हम तो केवल खाने के साथी हैं पाप के नहीं। यह सुन कर वाल्मीकि ने सब को छोड़ दिया और ऋषि के पास आकर सत्संग किया जिस के प्रभाव से आज उनका नाम जगद्विख्यात है। इसी प्रकार नारद जी भी एक दासी से उत्पन्न हुए थे। इनकी माता एक साधु के सत्संग में जाया करती थी यह भी उन के साथ महात्मा के पास जाया करते थे। उन के सत्संग के प्रभाव से इनकी बुद्धि निर्मल हो गई। उन्होंने कठिन तपस्या आरम्भ की जिसके प्रभाव से वह ब्रह्मा के घर उत्पन्न हुए और भगवान् के अनन्य भक्त कहलाए। इसी प्रकार अगस्त मुनि भी सत्संग के प्रभाव से उत्तम गति को प्राप्त हुए।

बिनु सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सत्संगति पद मंगल मूला।
सोई फल सिधि सब साधन फूला॥
शठ सुधरहिं सत्संगति पाई।
पारस परसि कुधातु सुहाई॥

बिना सत्संग के ज्ञान नहीं होता है और रघुनाथ जी की कृपा के बिना सत्संग नहीं मिलता। सत्संग ही आनन्द मंगल की जड़ है, दान यज्ञ तप आदि साधन और उसके फूल हैं और सिद्धि फल है। सत्संग पाकर शठ लोग ऐसे सुधार जाते हैं जैसे पारस के लगने से लोहा सुवर्ण हो जाता है।

यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं,
तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव।
बासो यथा रंग वशं प्रयाति,
तथा स तेषां वशमभ्युपैति॥

जैसे कपड़ा रंग के संग में रंग के आधीन होता है वैसे ही मनुष्य यदि सत्पुरुषों की सेवा करता है तो सत्पुरुषों के समान होता है, दुर्जनों की सेवा करता है तो उनके समान होता है, तपस्वी की सेवा करने से तपस्वी और चोर की सेवा करने से चोर हो जाता है। सत्पुरुषों का समागम होने से जीव के सब पाप समूल नष्ट हो जाते हैं, सब दुःखों का नाश हो जाता है और अखण्ड सुख प्राप्त होता है।

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इकअंग।
तुले न ताहि सकल मिल जो सुख लव सत्संग॥

एक बार देवताओं ने तुला के एक पलड़े में सत्संग का सुख रखा और दूसरे में मृत्यु लोक के सारे सुख रक्खे। परन्तु सत्संग के सुख वाला पलड़ा न उठा। फिर उस में स्वर्ग के सारे सुख रक्खे तब भी सत्संग का पलड़ा तिल मात्र भी न उठा। पश्चात् उसमें मोक्ष का सुख भी रख दिया। फिर भी सत्संग का पलड़ा भारी रहा। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस सत्संग का ऐसा प्रभाव है उस सत्संग से

प्रत्येक मनुष्य को लाभ उठाना चाहिये।

जाड्यम् धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्संगतिः कथय किन्न करोति पुंसाम् ॥

सत्संग बुद्धि की जड़ता को दूर करता है, वाणी में सत्य का सेचन करता है, मनुष्य की उन्नति के मार्ग को दिखाता है, पापको दूर करता है, चित्त को प्रसन्न करता है और सब दिशाओं में कीर्ति को फैलाता है, सत्संग मनुष्य का कौनसा भला नहीं करता है। सत्संग कुमति को दूर करके बुद्धि को निर्मल करता है, चित्त के पापों को नष्ट करता है और करुणा का विस्तार करता है। सत्संग के प्रभाव से मनुष्यों के सारे कल्याण के साधन सिद्ध होते हैं।

सत्संगात् भवति हि साधुता खलानां,
साधूनां नहि खल संगमात्खलत्वम्।
आमोदं कुसुमभवं मृदेव धत्ते,
मृद्गन्धं नहि कुसुमानि धारयन्ति ॥

खल पुरुषों को सत्संग से साधुता प्राप्त होती है किन्तु साधु पुरुषों को खलके संग से खलत्व नहीं प्राप्त होता। मृत्तिका ही फूल की सुगन्ध को धारण करती है परन्तु फूल मिट्टी की गन्ध को ग्रहण नहीं करते। दुर्जन के संग से मनुष्य को बहुत हानि होती है। देखो अग्नि लोह के संग से मुद्गरों कूटी जाती है, दुर्योधन का संग करने से भीष्म पितामह और आचार्य द्रोणादि की भी मति मारी गई। अतः असत् पुरुषों का संग सर्वथा छोड़ना चाहिये और सत्पुरुषों का संग करना चाहिये। क्योंकि:-

हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात्।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् ॥

हीन पुरुषों के संग से मति हीन होती है, सम पुरुषों के संग से सम और विशिष्ट पुरुषों के संग से बुद्धि भी विशिष्ट होती है। यदि मनुष्य सत्संग से दूर रहेगा तो यह अवश्यम्भावी है कि वह दुर्जनों के संग में पड़ेगा। इस हेतुः-

सङ्ग सद्भिः सह कर्तव्यः।

सत्पुरुषों का संग करना चाहिये। यह सारा संसार संग से ही उत्पन्न हुवा है। पृथिवी में बोये हुए बीजों को पानी का संग होने से उनमें अंकुर फूटता है, एक एक ईंट के परस्पर संग से बड़ा भारी भवन हो जाता है, पारस मणि के संग से लोहा सोना हो जाता है इसी प्रकार सत्पुरुषों के संग से सकल सिद्धियां प्राप्त होती हैं। सत्संग की महिमा अपार है। भजन पूजन, अर्चन वन्दन आदि सब सत्संग से प्राप्त होते हैं।

महानुभावः संसर्गः कस्य नोन्नति कारकः।
रथ्याम्बु जान्हवी संगात् त्रिदशैरपि वंद्यते ॥

जिस प्रकार से नालों का जल गंगा जी के साथ मिल कर देवताओं से भी वन्दनीय होता है इसी प्रकार महानुभावों का संसर्ग भी प्रत्येक प्राणी की उन्नति करने वाला होता है। अतः कल्याणेच्छुओं को निरन्तर सत्संग करना चाहिये।

"नूमा"

ब्रह्मविन्दु उपनिषद्

न दो प्रकार का होता है, शुद्ध और अशुद्ध। कामना वाले मन को अशुद्ध कहते हैं, और कामना रहित को शुद्ध। मन ही मनुष्यों के बन्धन का और मोक्षका कारण है। यदि मन विषयों में आसक्त हो तो बन्धन का कारण होता है और विषयों से निवृत्त हुआ मन मुक्त होता है। इस कारण से मुक्ति की आकांक्षा करने वाले को चाहिये कि अपने मन का निरोध करे। विषय संग से पृथक् हुवा हृदय में स्थित मन जब ब्रह्म के जानने की इच्छा वाला होता है तब वह परमपद को प्राप्त होता है। जब तक हृदयस्थित वासनाओं का क्षय न हो तब तक प्रत्येक प्राणि को उचित है कि वह अपने मन का भलि प्रकार संयमन करे। मन के संयमन को ज्ञान और मोक्ष कहते हैं। जो कुछ इससे भिन्न है वह केवल ग्रन्थ का विस्तार है। जब मन अशुद्ध होता है तब ब्रह्म का चिन्तवन नहीं हो सकता। शुद्ध मनसे अचिंत्य मन का भी चिंतवन हो सकता है। इस प्रकार शुद्ध मन से ब्रह्म का ध्यान करने से पक्ष-पात रहित ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। मनको रोक कर प्रथम सगुण ब्रह्मकी धारणा करे। इसके पश्चात् निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करनी चाहिये क्योंकि निर्गुण भावना से ही भाव अभाव रूप नहीं होता। यह ब्रह्म सब प्रकार की कला से रहित। सब विकल्प से रहित और माया से रहित है "ऐसा ब्रह्म मैं हूं" जब यह ज्ञान हो जाता है तब ब्रह्मकी प्राप्ति कही जाती है। उस ब्रह्म में किसी प्रकार का विकल्प नहीं है। उसमें हेतु और दृष्टान्त भाव नहीं होता। वह प्रमाण रहित है, उससे प्रथम कोई नहीं है। ऐसे परम शिव का ज्ञान प्राप्त होने से ज्ञानी को किसी प्रकार का बंधन नहीं रहता। उसमें उत्पत्ति भाव नहीं रहता। उसको बन्धन करने योग्य कोई भी नहीं होता, उसका शासन रूप कोई भी नहीं होता, उसको मुक्ति की इच्छा नहीं रहती और वह मुक्त भाव भी नहीं होता। जिनको परमार्थ की प्राप्ति हो जाती है उनकी ऐसी स्थिति होजाती है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में एक ही आत्मा है ऐसे मानना चाहिये। इन तीनों अवस्थाओं को उल्लंघन करने से पुनर्जन्म नहीं होता क्योंकि सकल भूतों में एक ही आत्मा है। आत्मा एक होकर भी जैसे जल के अलग २ पात्रों में चन्द्रमा का बिम्ब अलग २ दिखाई देता है वैसे ही उपाधि से पृथक् २ दिखाई देता है। जब घटका नाश होता है तो उसमें रहने वाला आकाश महाकाश में लय हो जाता है। परन्तु घट में रहने वाले आकाश का नाश नहीं होता। इसी प्रकार देह के नाश होने से घटवत् जीव अनेकानेक देह बारम्बार धारण करता है। देह जिसका नाश होता है कुछ भी नहीं जानता, परन्तु आत्मा जो नित्य है वह सब कुछ जानता है। जीव जब तक शब्द रूप माया में आवृत्त है तब तक वह हृदयाकाश में टिकता है, परन्तु अज्ञान के नाश होने से सब को एक रूप देखता है। देहादिक के नाश होने पर जिसका नाश नहीं होता वह शब्दाक्षर परब्रह्म है। जो अधिकारी पुरुष आत्माके कल्याण की इच्छा करता हो उस अधिकारी को अक्षर ब्रह्मका ध्यान करना चाहिये। शब्द ब्रह्म और परब्रह्म अर्थात् परा अपरा ऐसी दो प्रकार की विद्या जानो। जो अक्षर ब्रह्मके जानने में कुशल होता है उसको ब्रह्मकी प्राप्ति होती

है। बुद्धिमान् पुरुष इस ग्रन्थ का अभ्यास करके जैसे धान की इच्छा वाले चावल को ग्रहण करके छिलके को त्याग देते हैं, वैसे ही विज्ञान के तत्व को जानने के पश्चात् सब ग्रन्थ का त्याग करदे। जैसे अनेक रंग वाली गौओं का दूध एक ही रंग का होता है, वैसे ही विज्ञानात्मा दूधवत् एक रंग का है। भेद जैसे गौओं में है ऐसे देहों में है। जैसे दूध में घी अवश्य होता है, वैसे ही सब भूतों में विज्ञानात्मा रहता है। इस विज्ञानात्मा का मन रूप रई से मन्थन करे और ज्ञान रूप नेति जोड़े, इसके पीछे उसमें से उत्पन्न हुए मक्खन में से घी निकाले। फिर योग रूप अग्नि पर धरे। इस प्रकार करने से "सब कलाओं से रहित शुद्ध और शान्त ब्रह्म मैं ही हूं" ऐसी स्मृति होती है। "जिसका सब प्राणियों में वास है और जो आत्मा अनुग्रह करके सब प्राणियों में रहता है वही आत्मा। हे वासुदेव! मैं स्वयं हूं। हे वासुदेव! वही आत्मा मैं स्वयं हूं।"

भक्तों के चरित्र।

शबरी

स देवी शिवरी ने अपनी निःस्वार्थ सेवा, तप और प्रेम के प्रभाव से बड़े बड़े ऋषि महर्षियों को चकित कर दिया था, जिस के प्रेमाधीन होकर स्वयं भक्तवत्सल भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने उनके आश्रम को पवित्र किया उन देवी शबरी के जीवन की कुछ पंक्तियां भक्ति के पाठकों के समक्ष में रखते हैं। आशा है कि भक्ति के पाठक इन पंक्तियों से कुछ लाभ उठावेंगे क्योंकि भक्तों के चरित्र से भगवान् की लीला का भाव प्रकट होता है।

शबरी का जन्म शबर नामक भीलों के कुल में हुवा था। पूर्व जन्म में शबरी किसी ऋषि की पत्नी थीं। उनके पति ने किसी बात पर क्रुद्ध होकर इन को शाप दे दिया था। उसी शाप के कारण शबरी का इस कुल में जन्म हुवा। जब शबरी युवावस्था को प्राप्त हुई तब उन को किसी भोग विलास की इच्छा न थी। उन्होंने अपने आप को भगवत् सेवा के अर्थ समर्पण कर दिया और आजन्म ब्रह्मचारिणी रह कर भगवद्भक्ति करने का निश्चय कर लिया। देवी शबरी ने देखा कि बिना गुरु के जीवका संसार सागर से निस्तारा नहीं हो सकता तो वह किसी को गुरु करने की इच्छा से अपने गृह से निकलीं। इसी खोज में जब वह किसी सन्त महात्मा

के पास जातीं तो वह उन्हें भील जाति की समझ कर फटकार बतलाते और अपने आश्रम से निकाल देते। शबरी ने अपने मन में सोचा कि भगवान् की भक्ति में तो जाति पांति, ऊंच नीच का कोई विचार है ही नहीं। अतः उन्हीं की भक्ति करनी चाहिए। उन्हीं की कृपा से सत्गुरु की प्राप्ति होगी। इसी लक्ष को ध्यान में रख कर वह विचरती २ पम्पा सरोवर के निकट पहुंचीं। यह स्थान बहुत ही रमणीक था। इसके दक्षिण की ओर मतंग ऋषि का आश्रम था। इस आश्रम में मतंग ऋषि तप किया करते थे अतः यह आश्रम उन ही के नाम से प्रसिद्ध था। देवी शबरी ने मतंग ऋषि के तप तेज को देख कर अपने मन में निश्चय किया कि येनकेनप्रकारेण इन्हीं से दीक्षा लेनी चाहिए। निःस्वार्थ सेवा ही इसका सरल उपाय है। यह सोच कर उन्होंने गुप्त रूप से उनकी सेवा करनी आरम्भ की। ऋषियों के यज्ञादि के लिए वह समिधा एकत्र करके गुप्त रूप से आश्रम के द्वार पर रख आया करती थी। जिस मार्ग से ऋषिवर स्नान करने के लिए जाया करते थे उस मार्ग को झाड़ बुहार कर निर्मल कर देती थी। इस बात को देख कर मतंग ऋषि बड़े विस्मय में और कहने लगे:-

बड़े ही असंग वे मतंग रस रङ्ग भरे,
धरे देखि बोझ कह्यो कौन चोर आयो है।
करे नित चोरी अहो गहो चाहि एक दिन,
बिना पाये प्रीति याको मन भरमायो है॥

वह अपने मन में कहने लगे कि ऐसा कौन पुण्य शाली है जो हमारी गुप्त रूप से ऐसी सेवा करता है! उसने आश्रम के सब भागों को साफ कर दिया है। वह यज्ञ के लिए रात को समिधा बीन कर धर जाता है, हमारी कुटि के सन्मुख नित्य झाड़ लगा जाता है। ऐसे अदृश्य परोपकारी का अवश्य पता लगाना चाहिए। यह सोच कर उन्होंने अपने शिष्यों को आज्ञा दी कि रात्री को क्रम २ से सब पहरा दो। इस से उस निःस्वार्थ सेवक का अवश्य पता लग जायगा। शिष्यों ने वैसा ही किया और सब क्रम २ से पहरा देने लगे।

बैठे निशि चौकी देत शिष्य सब सावधान,
आय गई गहि लई काँपै तन नायो है।
देखत ही ऋषि जल धारा चली नैनन ते,
बैनन सों कह्यो जात कहा कछु पायो है॥

अर्ध रात्रि के समय शबरी अपने शिर पर लकड़ियों का भार लिये हुए आई। शिष्य उसे पकड़ कर मतंग ऋषि के पास ले गये। शबरी ऋषि के डर से कांपने लगी। जब वह सन्मुख गई तब दुख व में नीच कुलोत्पन्ना हूं इस डरके कारण कुछ विनय न कर सकी। परन्तु ऋषि भक्ति के मूल्य को जानने वाले थे। उन्हों ने शबरी से उनका वृत्तान्त पूछा। कुमारी शबरी ने संक्षेप में अपनी सब कथा कह सुनाई। तब महर्षि ने कहा कि "बेटी तुम भील कन्या होते हुए भी ब्राह्मण कन्या से श्रेष्ठ हो" ऐसा कह कर मतंग ऋषि उसे अपने आश्रम में ले आये और उन्हें भगवन्मन्त्र का उपदेश दिया। यह देख कर दूसरे ऋषि बहुत अप्रसन्न हुए और कहने लगे कि एक अन्त्यज कन्या को दीक्षा देकर ऋषि ने घोर पाप में पदार्पण किया है। अरे! महर्षि को अपने जीवन की संध्या में यह क्या सूझा! इस भीलनी को अपने आश्रम में रखलिया और दीक्षा भी दे दी! परन्तु वह सब ऋषिके तपके प्रभाव से उन के सन्मुख कुछ नहीं

कह सकते थे।

एक दिन शबरी मतंग ऋषि के आश्रम के आगे झाड़ू लगा रही थी। उसी समय एक ऋषि पम्पासर में स्नान करके आ रहे थे। शबरी को यह ज्ञान नहीं हुआ कि कोई ऋषि स्नान करके आ रहे हैं। वह बराबर झाड़ू लगाती रही। असावधानी से शबरी का वस्त्र तपस्वी से छू गया। ऋषि को बड़ा क्रोध आया। वह देवी शबरी को बहु कटु वचन कह कर पुनः स्नान करने चले गए। वहां जाकर क्या देखते हैं कि तड़ाग में जल के स्थान में रुधिर भरा है और लम्बे २ कीट भी हो गए हैं। उन्होंने इस महत्व को छिपा कर शबरी की बुराई करना आरम्भ किया और कहने लगे कि, महर्षि ने भीलनी को दीक्षा देकर शिर पर चढ़ा लिया है उसी के फल स्वरूप पम्पासर का जल रक्तमय हो गया है।

कुमारी शिबरी ने सब वृत्तांत गुरु जी से कहा उन्होंने धर्म पर आरूढ रहने की शिक्षा देकर कहा कि "बेटी पुण्य पथ पर जाति और वर्ण सब विलुप्त हो जाते हैं। वहां पर सो जो ब्रह्म को खोजता है वही ब्राह्मण कहलाता है। तुम अपने कर्मों से ब्राह्मण कन्या से भी श्रेष्ठ हो। गुरु के उपदेश से कुमारी शबरी को शान्ति मिली।

जब मतंग ऋषि के परम धाम जाने का समय आया तब एक दिन उन्होंने कुमारी शबरी को अपने पास बुला कर कहा कि:-

शबरी से कह्यो तुम राम दर्शन करो।
मैं तो परलोक जात आज्ञा प्रभु पालिये॥

"बेटी तुम किसी प्रकार की चिंता मत करना, यह संसार नश्वर है जो उत्पन्न हुवा है वह अवश्य मरण को भी प्राप्त होगा। मैं आज मुक्ति देवी की शरण को प्राप्त होने के लिए इस असार संसार से विदा हूंगा। तुम अपने धर्म पर आरूढ रहना, अतिथि का सत्कार करना। यह आत्मा अमर है कभी नष्ट नहीं होती। जो जितने समय के लिये इस संसार में आया है वह उतने समय रह कर अवश्य यहां से विदा होगा।" इतना सुन कर देवी शबरी का हृदय विरह के दुःख को स्मरण करके अधीर होकर विरहानल में भस्म होना ही चाहता था कि महर्षि ने उनसे कहा "बेटी तुम यहीं रहो भगवान् रामचंद्र जी कुटी पर पधारेंगे। उनके चरण कमलों का दर्शन करके अपने जीवन को सफल करना"। इस वाक्य से देवी को कुछ आश्वासन मिला। महर्षि जी ने तो सदैव के लिए संसार रूपी सागर को तिलाञ्जली दे दी और देवी शबरी रघुनाथ जी के दर्शनों की अभिलाषा से प्रसन्न हो कर भजन ध्यान में लगी रही। वह नित्य जंगल में से बेर एकत्र करके लाती थी और इस भाव से कि कहीं खट्टे बेर भगवान् के मुंह को खट्टा न कर दें चख चख कर जो उन में मीठे होते वे भगवान् के निमित्त नित्य प्रति रक्खा करती। जिस ओर से रघुनाथ जी पधारेंगे उसी मार्ग में जाकर उनकी बाट देखा करती थी। जब देवी शबरी अपनी कुरूपता व जाति की नीचता को विचारती तो किसी स्थान पर झाड़ी में छिप जाती और जब अपने गुरू के वचन, भगवत् की कृपालुता व पतितपावनता पर विचार करती तो आगे लेने को दौड़ती इसी प्रकार भगवत् के प्रेम में ही दिन और रात व्यतीत होते।

अन्ततोगत्वा भक्तवत्सल भगवान् ने उन की

कुटी पर पधारने की कृपा की तब:-

सरसिज लोचन बाहु विशाला ।
जटा मुकुट शिर उर वनमाला ॥
श्याम गौर सुन्दर दोऊ भाई ।
शबरी परी चरण लपटाई ॥
प्रेम मगन मुख वचन न आवा ।
पुनि पुनि पद सरोज शिर नावा ॥
सादर जलले चरण पखारी ।
पुनि सुन्दर आसन बैठारी ॥

कमल से नेत्र, लम्बी भुजा, मस्तक पर जटा का मुकुट और हृदय पर वनमाला धारण किये हुए श्याम और गौर दोनों भाइयों के चरणों में शबरी ने प्रणाम किया। भगवान् के दर्शनों से शबरी को अपार आनन्द हुवा। वह श्री रामचंद्रजी के चन्द्र-वदन पर चकोर होगई और प्रेममें इतनी मग्न होगई कि मुख से वचन नहीं निकला। उसने बारम्बार भगवान् के चरण कमलों को प्रणाम किया और आदर से जल लेकर चरण धोये पुनः सुन्दर आसन पर विठाया। इसके पश्चात्:-

कन्द मूल फल सरस अति दिये राम कहं आनि।
प्रेम सहित प्रभु खायहू बारहिं बार बखानि ॥

अत्यन्त रसीले कन्द मूल फल लाकर राम-चंद्रजी की भेट किये। भक्त वत्सल आनन्द कंद भगवान् तो प्रेम के भूखे हैं। उन्होंने तो प्रेमाधीन होकर दुर्योधन के स्वादिष्ट भोजनों को तिलाञ्जलि देकर विदुर का शाक पात खाया, कर्मा बाई की बासी खिचड़ी खाई। भगवान् का निवास तो प्रेम में है। जहां प्रेम होता है वहीं भगवान् रहते हैं। शबरी का भी ऐसा ही अचल प्रेम और भक्ति देख कर:-

बेर बेर बेर लै सराहैं बेर बेर बहु,
रसिक बिहारी देत बन्धु कहैं फेर फेर।
चाखि चाखि भाषैं यह बाहुते महान मीठो,
खेहू तौ लषन यों बखानत हैं हेर हेर ॥
बेर बेर देवे बेर शबरी सुबेर बेर,
तोऊ रघुबीर बेर बेर तेहि टेर टेर।
बेर जनि लावौ बेर बेर जनि लावौ बेर,
बेर जनि लाओ बेर लवौ कहैं बेर बेर ॥

भगवान् श्री रामचन्द्र जी एक बेर उठावें और मुख में डाल कर उसकी मधुरता व मिठास की श्लाघा करते हैं कि अहो लक्ष्मण जी! ऐसा मीठा फल कभी नहीं खाया है। फिर दूसरा बेर उठावें और इसी भान्ति शबरी के प्रेम में मग्न होकर श्लाघा करें। इस प्रकार से जब भोजन कर चुके तब शबरी हाथ जोड़ कर खड़ी होगई और कहने लगि कि, हे भगवन्! मैं नीच जाति हूं और नीच जाति में भी स्त्री हूं, मेरी बुद्धि जड़ है मैं आपकी किस प्रकार स्तुति करूं। तब भगवान् ने कहा:-

पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जाती नामा श्रमोद्भवः।
न कारणं मद्भजने भक्ति रेव हि कारणम् ॥
यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययन कर्मभिः।
नैव दृष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिर्विमुखैः सदा ॥

पुरुष, स्त्री, जाति और आश्रम यह मेरे भजन में कोई कारण नहीं हैं। केवल एक मात्र भक्ति ही कारण है। जो मेरी भक्ति से विमुख हैं वे यह,

दान, तप और वेदाध्ययनादि कर्मों को करके भी मुझे कभी नहीं देख सकते। देवी शबरी सुनो मैं तो केवल भक्ति का नाता मानता हूं। जाति, पांति, कुल, धर्म, बड़ाई, द्रव्य, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुराई आदि से युक्त होने पर भी बिना भक्ति के सब व्यर्थ है। मैं तुमसे नौ प्रकार की भक्ति कहता हूं वह सावधान होकर सुनो।

चौ०-प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भक्ति अमान।
चौथि भक्ति मम गुन गन करैं कपट तजि गान॥
चौ०-मंत्र जाप मम दृढ बिस्वासा।
पञ्चम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम शील बिरति बहु कर्मा।
निरत निरन्तर सज्जन धर्मा॥
सप्तम सब मोहि मय जग देखै।
मोते संत अधिक करि लेखै॥
अष्टम जथालाभ सन्तोषा।
सपनेहु नहिं देखै पर दोषा॥
नवम सरल सब सौं छल हीना।
मम भरोस हिय हरष न दीना॥

सन्तों का सत्संग करना यह पहिली भक्ति है। मेरी कथा के प्रसङ्ग में प्रीति करना दूसरी भक्ति है। अभिमान त्याग कर गुरु के चरण कमलों की सेवा करना तीसरी भक्ति है। कपट त्याग कर भगवान के गुणों का गान करना चौथी भक्ति है। मंत्र का जप, भगवान में दृढ विश्वास और भजन करना यह पांचवीं भक्ति है। इन्द्रियों का दमन करना, सुन्दर स्वभाव होना, बहुत से कर्मों से विरक्त होना और सज्जनों के धर्म में निरन्तर प्रीति करना यह छठी भक्ति है। सब संसार को भगवान का रूप समझना और सन्तों को भगवान से भी अधिक जानना यह सातवीं भक्ति है। जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तोष करना और पराये दोषों को स्वप्न में भी न देखना यह आठवीं भक्ति है। सब के साथ सीधा पन और छल रहित व्यवहार करना, मन में भगवान का भरोसा रखना और हर्ष शोक से रहित रहना यह नवमी भक्ति है। इन नौ भक्तियों में से जिस में एक भी भक्ति हो वह चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष मुझको प्राणों से भी प्यारा है। मेरी भक्ति का अवलम्ब करके स्त्री, वैश्य और शूद्र भी परम गति को प्राप्त होते हैं। हे शबरी! तेरे हृदय में तो सब भांति की भक्ति है। अतः जो गति योगीश्वरों को भी कठिन थी वह आज तुम को प्राप्त हुई। भगवान् राम चन्द्रजी के ऐसे प्रेम भरे शब्दों को सुन कर शबरी के हृदय में बड़ा आनन्द हुआ। भगवान् की अन्य मुनि गण भी प्रतीक्षा कर रहे थे। अतः भगवान् उन सब तपस्वियों के आश्रमों में पधारे और उनसे कुशल क्षेम पूछा। तब ऋषियों ने कहा कि भगवन्! हमें आपकी कृपा से सब प्रकार का आनन्द है हमें तपादि करने के सब प्रकार के साधन प्राप्त हैं परन्तु पम्पा-सर का जल रक्तमय हो गया है यह कष्ट तो अवश्य है। अतः आप कृपा करके इस सरोवर के जल को निर्मल करने का उपाय बतलावें। तब भगवान् देवी शबरी और ऋषियों को लेकर पम्पासर पहुंचे। वहां पहुंच कर कहा की "शबरी के पादस्पर्श से यह जल शुद्ध हो सकता है"। यह सुनकर सब ऋषियोंने बहुत आश्चर्य किया और अपने मनमें विचार करने लगे कि भीलनी

के चरणों से स्पर्श हुए जल में किस प्रकार स्नान करेंगे। परन्तु जल शुद्ध होने का और कोई उपाय न देख कर उन्होंने भगवान् श्री रामजी की आज्ञा से शबरी देवी से प्रार्थना की। शबरी ने लज्जित होते हुए अपने चरण कमलोंसे जल का स्पर्श किया। उस परम भक्ता के चरणों के पड़ते ही तड़ाग भगवद्भक्तों के मानस के सदृश विमल हो गया।

पम्पासर का जल शुद्ध होने के पीछे रामचंद्र जी ने देवी शबरी से जाने की आज्ञा मांगी। तब शबरी ने कहा कि, भगवन्! मैं आपके दर्शनार्थ श्री गुरुदेव की आज्ञा के अनुसार अपने प्राणों को अब तक धारण किये हूं। अब मेरे हृदय में आपका परम मनोहर रूप समागत है मैं आपके विरह में अब एक क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकूंगी। आप जाने से पहिले इस दासी को प्राणत्याग की आज्ञा दीजिये। रामजी ने देवी शबरी को आज्ञा दी कि जाओ गुरु लोक में वास करो। देवी शबरी ने भगवान् को प्रणाम किया। इसके पश्चात् सब ऋषियों को प्रणाम करके योगाग्नि से अपने शरीर को भस्म कर दिया।

कहि कथा सकल विलोकि हरि मुख,
हृदय पद पंकज धरे।
तजि योग पावक देह धरि,
पदलीन भई जहं नहिं फिरे।
नर विविध कर्म अधर्म बहु मत,
शोक प्रद सब त्याग हू।
विश्वास करि कह दास तुलसी,
राम पद अनुराग हू॥

पाठक! बहुत से कर्म, अधर्म और शोक के देने वाले बहु मतों को छोड़ो और देवी शबरी की भांति एक निष्ठा से भगवान् के चरणों से प्रीति जोड़ो यही लेखक की प्रार्थना है।

"भूमा"

मानवधर्म सार।

पञ्चमोऽध्यायः

श्रुत्वैतानृषयो धर्मान्स्नातकस्य यथोदितान्।
इदमूचुर्महात्मानमनलप्रभवं भृगुम्॥ १॥

स्नातक के इन यथोक्त धर्मों को सुनकर ऋषि लोग अग्नि से उत्पन्न हुए महात्मा भृगु से यह बोले॥ १॥

एवं यथोक्तं विप्राणां स्वधर्ममनुतिष्ठताम्।
कथं मृत्युः प्रभवति वदेशास्त्रविदां प्रभो॥ २॥

कैसे हे प्रभो! मृत्यु उन ब्राह्मणों को दबाने को समर्थ होता है, जो इस प्रकार तुम से कहे धर्म का अनुष्ठान करते हैं और वेद शास्त्र को समझते हैं॥२

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः।
शृणुतां येन दोषेण मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति॥३॥

तब वह मनु का पुत्र धर्मात्मा भृगु उन महर्षियों से बोला, सुनिये, जिस दोष से मृत्यु ब्राह्मणों को मारना चाहता॥ ३॥

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति॥४

वेदों के अनभ्यास से आचार के छोड़ देने से आलस्य से और अन्न के दोष से मृत्यु ब्राह्मणों को मारना चाहता है ॥ ४ ॥

यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः ।
भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुरा ॥ ५ ॥

पशु और पक्षी जो अच्छे कहे हैं, वह यज्ञ के लिये वा अवश्य पालने योग्यों के पालने के लिए ब्राह्मणों से मारे जा सकते हैं । ॥ ५ ॥

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया ।
यथाविधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये ॥ ६

मनुष्य मांस को खा सकता है, जब कि प्रोक्षित है वा, जब ब्राह्मणों की इच्छा हो, वा जिसको विधि के अनुसार आज्ञा मिली है, वा जब प्राण खतरे में हों ।

प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयत् ।
स्थावरं जंगमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥ ७

प्रजापति ने इस सब को प्राण का अन्न बनाया है । स्थावर और जङ्गम सब प्राण का भोजन है ॥ ७ ॥

चराणामन्नमचरा दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः ।
अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणां चैव भीरवः ॥ ८

चलने वालों के न चलने वाले अन्न हैं, दाढ़ वालों के न दाढ़वाले, हाथ वालों के न हाथ वाले और शूरों के डरपोक अन्न हैं ॥ ८ ॥

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः ।
स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ॥ ९

यथा विधि आज्ञा दिया हुआ जो पुरुष मांस नहीं खाता है, वह मरकर इक्कीस जन्म पशु बनता है।

यावन्ति पशु रोमाणि तावत्कृत्वो ह मारणम् ।
वृथापशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि १०।

जितने मारे जाने वाले पशु के रोम होते हैं, उतनी बार वृथा पशु मारनेवाला मरकर जन्म २ में मारा जाता है ॥ १० ॥

ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणस्तथा ।
यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतिः पुनः ॥ ११

ओषधियें, वृक्ष, पशु पक्षी और दूसरे जन्तु यज्ञ के लिये नाश को प्राप्त हुए फिर ऊंचे जन्म को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

या वेद विहिता हिंसा नियताऽस्मिंश्चराचरे ।
अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥ १२

जो वेद विहित हिंसा इस चर अचर में नियत की गई है, उसे अहिंसा ही जाने, क्योंकि वेद से ही धर्म प्रकाशित हुआ है ॥ १२ ॥

यो बन्धनवधक्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति ।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ १३

जो प्राणियों को उनके बांधने और मारने के क्लेशों को नहीं देना चाहता है, वह सब का हित चाहने वाला अत्यन्त सुख पाता है ॥ १३ ॥

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ।
मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥ १४

एक वह पुरुष जो वर्ष २ पीछे सौ वर्ष

तक अश्वमेध यज्ञ करे, और दूसरा वह जो मांस कभी न खाय, इन दोनों का पुण्यफल समान होता है ॥ १४ ॥

सर्वेषामेव शौचानामर्थ शौचं परं स्मृतम् ।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचि ।१५

सारी शुद्धियों में से धन की शुद्धि सब से उत्तम कही गई है, जो धन में शुद्ध है वह शुद्ध है, मिट्टी और जल से शुद्ध शुद्ध नहीं ॥ १५ ॥

क्षान्त्या शुद्ध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥ १६

विद्वान क्षमा से शुद्ध होते हैं, निषिद्ध कार्य करने वाले दान से, गुप्त पापों वाले जप से, वेद के जानने वालों में श्रेष्ठ पुरुष तपसे शुद्ध होते हैं ॥१६॥

मृत्तोयैः शुद्ध्यते शोध्यं नदी वेगेन शुद्ध्यति ।
रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विनोत्तमः ॥१७

शोधने योग्य वस्तु मट्टी जल से शुद्ध होती है नदी वेग से शुद्ध होती है, जिस के मन में दोष उत्पन्न हुआ है वह स्त्री ऋतु से और ब्राह्मण सन्यास से शुद्ध होता है ॥ १७ ॥

अजाश्वं मुखतो मेध्यं गावो मेध्याश्च पृष्ठतः।
ब्राह्मणाः पादतो मेध्याः स्त्रियो मेध्याश्च सर्वतः॥

बकरी और अश्व मुख से पवित्र होते हैं, गौ का पृष्ठ भाग पवित्र होता है, ब्राह्मणों के चरण पवित्र होते हैं और स्त्रियां सर्वाङ्ग पवित्र हैं ॥ १८ ॥

गौरमेध्या मुखे प्रोक्ता अजा मेध्या ततः स्मृता।
गोः पुरीषं च मूत्रं च मेध्यमित्यब्रवीन्मनुः ॥

गौ का मुख अपवित्र होता है और अजाका मुख पवित्र होता है। गौ का मूत्र और पुरीष पवित्र होता है यह मनुजी कहते हैं ॥ १९ ॥

सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्योक्त्वानृतानि च
पीत्वापोऽध्येष्यमाणश्च आचामेत्प्रयतोऽपि सन् ।

सोकर छींककर, खाकर, थूककर, झूठ बोल कर, पानी पीकर और पढने लगा आचमन करे चाहे पहले शुद्ध भी हो ॥ २० ॥

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने ।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥

बालकपन में पिता के, यौवन में पति के, पति के मरने पर पुत्रों के आधीन रहे, स्त्री कभी स्वतंत्र न होवे ॥ २१ ॥

[पत्यौ जीवति या तु स्त्री उपवासं व्रतं चरेत् ।
आयुष्यं हरते भर्तुः नरकं चैव गच्छति ॥

जो स्त्री पति के जीवित रहने पर उपवास करती है वह उपवास करके पति की आयु का हरण करती है। और स्वयं नरक को प्राप्त होती है ॥ २२॥

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ।
दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुल संततिम् ॥

अनेक सहस्र ब्राह्मण जो युवा होकर भी ब्रह्मचारी रहे हैं वह अपने कुल को जारी रखने के विना भी स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं ॥ २३ ॥

मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥

पति के मरने पर जो भली स्त्री ब्रह्मचर्य में

स्थिर रहती है, वह बिना पुत्र भी स्वर्ग को जाती है जैसे वह ब्रह्मचारी ॥ २४ ॥

षष्ठोऽध्यायः

यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥

जो सब भूतों को अभय देकर घर से परिव्राजक होकर निकलता है, उस ब्रह्मवादी के तेजोमय लोक होते हैं ॥ १ ॥

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥ २ ॥

इच्छा न मरने की रक्खे न जीने की, काल की ही प्रतीक्षा करे जैसे भृत्य मजदूरी की ॥ २ ॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् ॥ ३ ॥

दृष्टि से पवित्र हुआ पाओं रक्खे वस्त्र से पवित्र हुआ जल पिये, सचाई से पवित्र हुई वाणी बोले, मन से पवित्र हुआ आचरण करे ॥ ३ ॥

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ।
न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ४ ॥

सख्त शब्दों को सहारे, किसी का अपमान न करे, इस देह के लिए किसी से वैर न करे ॥ ४ ॥

क्रुद्ध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ।
सप्त द्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥ ५ ॥

क्रोध करते हुए पर प्रतिक्रोध न करे, किसी ने झिड़क दिया है, तो उस के लिए कुशल कहे सात द्वारों में बटी हुई वाणी से झूठ न बोले ॥ ५

विधूमे सन्नमुसले, व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।
वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥ ६ ॥

जब धूआ दूर हो चुका हो मूसल बंद हो, अंगारे ठंडे हो गए हों, घरके लोग खा चुके हों, थालियें उठा दी गई हों, ऐसे समय पर यति सदा भिक्षा करे ॥ ६ ॥

इन्द्रियाणां निरोधेन, रागद्वेषक्षयेण च ।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ७ ॥

क्योंकि इंद्रियों के रोकने से, राग द्वेष के नाश से, और प्राणियों की अहिंसा से मोक्ष के योग्य होता है ॥ ७ ॥

दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः ।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ ८ ॥

जिस तिस आश्रम में रहता हुआ दूषित हुआ भी सब भूतों में समदृष्टि होकर धर्म का आचरण करे, चिह्न धर्म का कारण नहीं होता है ॥ ८ ॥

प्राणायामा ब्राह्मणस्य, त्रयोऽपि विधिवत्कृताः ।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥ ९ ॥

व्याहृतियों और ओंकार से युक्त प्राणायाम तीन भी विधि अनुसार किए हुए ब्राह्मण का परम तप जानना चाहिए ॥ ९ ॥

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ।

धौंकने से जैसे धातों के मैल जल जाते हैं, इस

सरह प्राण के रोकने से इंद्रियों के मैल जल जाते हैं।

सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबध्यते ।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ ११ ॥

परमात्मा के यथार्थ दर्शन से युक्त पुरुष कर्मों में नहीं बन्धता है, किन्तु साक्षात् दर्शन से हीन पुरुष संसार को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

अस्थिस्थूणंस्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धि, पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ १२

हड्डियें जिसमें खंभे हैं, नाड़ियों से युक्त है, मांस और लहू गन्ध के स्थान हैं, जो चमड़े से मंढा हुआ है, मूत्र और विष्ठा से भरा हुआ है, अतएव दुर्गन्धि है ॥ १२ ॥

जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ।
रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥१३॥

बुढ़ापे और शोक से युक्त है, रोगों का घर है, पीड़ा से युक्त है, धूलवाला है, और विनश्वर है, ऐसे पांच भूतों से बने इस घर को त्यागे ॥ १३ ॥

नदीकूलं यथा वृक्षो, वृक्षं वा शकुनिर्यथा ।
तथा त्यजन्निमं देहं कृच्छ्राद्ग्राहाद्विमुच्यते ॥

वृक्ष जैसे नदी के किनारे को वा पक्षी जैसे वृक्ष को छोड़ता है इस देह को छोड़ता हुआ दुःख रूपी मगर से छूटता है ॥ १४ ॥

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितम् ॥

जैसे सब नदी नद समुद्र में आराम का स्थान पाते हैं, वैसे ही सब आश्रमी गृहस्थ में आराम का स्थान पाते हैं ॥ १५ ॥

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

धीरज, क्षमा, दम, चोरी का त्याग, पवित्रता, इंद्रियों का रोकना, धी, विद्या, सचाई क्रोध से बचना, यह दश प्रकार का धर्म का स्वरूप है ॥१६

दश लक्षणानि धर्मस्य, ये विप्राः समधीयते ।
अधीत्य चानुवर्तन्ते, ये यान्ति परमां गतिम् ॥

जो ब्राह्मण धर्म के इन दश लक्षणों को पढ़ते हैं, और पढ़ने के पीछे उन पर चलते हैं, वह परमगति को प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥

[संन्यसेत्सर्वकर्माणि, वेदमेकं न संन्यसेत् ।
वेदसंन्यासतः शूद्रस्तस्माद्वेदं न संन्यसेत् ॥१८]

सम्पूर्ण कर्मों का त्याग करदे परन्तु वेद का त्याग न करे । वेद के त्याग से शूद्रत्व को प्राप्त होता है अतः वेदों का कदापि त्याग न करना चाहिये ॥१८॥

सप्तमोऽध्याय

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥ १ ॥

राजा बाल भी हो, तो भी यह मानकर कि मनुष्य है, उसका अपमान न करे क्योंकि मनुष्य के रूप से उसके शरीरमें भारी देवता स्थित हैं ॥ १ ॥

यस्य प्रसादे पद्मा श्रीर्विजयश्च पराक्रमे ।
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः ॥२

जिसके प्रसाद में बड़ी लक्ष्मी बसती है, पराक्रम में विजय और क्रोध में मृत्यु रहता है क्योंकि वह सब के तेज से बना है ॥ २ ॥

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च ॥

उसके भय से सब स्थावर जंगम भूत भोग के लिये समर्थ होते हैं और अपने धर्म से नहीं हिलते हैं।

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥ ४

दण्ड सारी प्रजाओं पर शासन करना है, दण्ड रक्षा करता है, दण्ड सोए हुओं में जागता है, दण्ड को बुद्धिमान् धर्म जानते हैं, ॥ ४ ॥

समीक्ष्य सधृतः सम्यक्सर्वा रञ्जयति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः ॥ ५

ठीक २ विचार करके धारण किया दण्ड सारी प्रजाओं को प्रसन्न करता है, बिन सोचे चलाया हुआ सब ओर से नाश करता है ॥ ५ ॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षो, दण्डश्चरति पापहा।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति, नेता चेत्साधु पश्यति ॥

जहां काला, लाल नेत्रों वाला दण्ड पापियों को ताड़ता हुआ विचरता है, वहां प्रजाएं व्याकुल नहीं होतीं, यदि चलानेवाला ठीक देखता है ॥ ६ ॥

स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः।
वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता ॥

अपने २ पद के अनुसार अपने २ धर्म में लगे हुए सारे वर्णों और आश्रमों का राजा रक्षक के तौर पर रचा गया है ॥ ७ ॥

वेनो विनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिवः।
सुदाः पैजवनश्चैव सुमुखो निमिरेव च ॥ ८॥

विनय के न होने से वेन नष्ट हुआ है, तथा राजा नहुष, राजा पिजवन का पुत्र सुदा सुमुख और निमि ॥ ८ ॥

पृथस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान्मनुरेव च।
कुबेरश्च धनैश्वर्यं, ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः ॥९

पृथु और मनु विनय से राज्य को प्राप्त हुए हैं, कुबेर धन के ऐश्वर्य को और गाधि का पुत्र विश्वामित्र ब्राह्मणपने को प्राप्त हुवा है ॥ ९ ॥

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥

व्यसन और मृत्यु में से व्यसन अधिक हानि कारक है, व्यसनी नीचे २ जाता है, और बिना व्यसन मरा स्वर्ग को जाता है ॥ १० ॥

एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः।
शतं दशसहस्राणि तस्माद्दुर्गं विधीयते ॥ ११

कोट पर खड़ा एक धनुर्धारी सौ के साथ युद्ध कर सक्ता है, और सौ दस हजार के साथ। इसलिये दुर्ग बनाया जाता है ॥ ११ ॥

आहवेषु मिथोऽन्योन्यं निघांसन्तो महीक्षितः।
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः

वह राजे, जो संग्राम में परस्पर एक दूसरे को मारना चाहते हुए पराङ्मुख न होकर पूरी शक्ति के साथ लड़ते हैं, वह स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

न च हन्यात् स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम्।
न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम् ॥

स्थल पर चढ़े को न मारे, न नपुंसक को, न जिसने हाथ जोड़ दिये हैं न जिस के बाल बिखर गए हैं, न जो बैठ गया है, न उसको जो "मैं तेरा हूँ" कह रहा है ॥ १३ ॥

नास्यच्छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु।
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥१४॥

जिस के छिद्र को शत्रु न जाने, पर आप शत्रु के छिद्र को जाने, कछुए की तरह अंगों को ढांपे रक्खे, और अपने छिद्र का बचाव करे ॥ १४ ॥

बकवच्चिन्तयेदर्थान्सिंहवच्च पराक्रमेत् ।
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ॥

बगले की तरह अपने प्रयोजनों में ध्यान रक्खे, शेर की तरह पराक्रम दिखलाए, भेड़िये की तरह झपट लेजाए और शशे की तरह निकल जाए ॥१५॥

यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति ।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥

जैसे सोना घास को निकाल फैंकता है और अनाज को रख लेता है वैसे राजा राष्ट्र की रक्षा करे, और विरोधियों को मारे ॥ १६ ॥

यस्य मंत्रं न जानन्ति समागम्य पृथक् जनाः।
स कृत्स्नां पृथिवीं भुंक्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः॥

जिसके मन्त्र को दूसरे लोग मिल करके नहीं जान पाते, वह राजा सारी पृथिवी को भोगता है चाहे कोश से हीन भी हो ॥ १७ ॥

मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम् ।
तदा द्विधा बलं कृत्वा, साधयेत्कार्यमात्मनः ॥

जब राजा शत्रु को सर्वथा बलवत्तर समझे, तब सेना को दो भाग में करके अपना कार्य साधे।

आपदर्थं धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥१८॥

आपदा के दूर करने के लिए धन की रक्षा करे, धन से भी स्त्रियों की रक्षा करे, और अपने आपकी सदा स्त्रियों से भी और धन से भी रक्षा करे, ॥ १९ ॥

सत्य ।

[ले० श्री० सूरजदेवी भगवद्भक्ति आश्रम]

नास्ति सत्य समो धर्मो नसत्यात् विद्यते परम्।
नहि तीव्रतरं किंचित् अनृतादिह विद्यते ॥

सत्य के समान कोई धर्म नहीं है और न ही सत्य से परे कुछ है। इसलोक में झूठके बराबर कोई तीव्रतर पाप नहीं है।

यजुर्वेद में भगवान ने मनुष्य के लिये सत्य भाषण की आज्ञा दी है यथा:-

सत्यं वद सत्यान्न प्रमदितव्यम् ।

हे जन ! सत्य बोल सत्य से प्रमाद न करना चाहिये। सत्य भाषण से पूर्व हम सत्य का प्रभाव जानने की इच्छा करते हैं क्योंकि जब किसी भी प्रकार का कर्म मनुष्य करता है तो पूर्व में उसके गुण तथा प्रभाव से यदि परिचित होगा तो भली प्रकार और प्रेम पूर्वक उस कर्तव्य पथ पर दृढ़ रह सकता है। अतः सत्य के प्रभाव से पहिले हमें सत्य का यथार्थ ज्ञान होना चाहिये।

सते हितं सत्यं-सति साधु सत्यम्।

जो वस्तु जैसी हो तथा जैसा श्रोत्रों से सुना हो, नेत्रों से देखा हो उसको उसी रूप में वर्णन करना तथा व्यवहार में लाना सत्य कहलता है। जैसे ईश्वर को ईश्वर तथा नित्य समझना और प्रकृति को प्रकृति तथा अनित्य समझना सत्य है। इसके विपरीत जानना असत्य है। एक समय कुंतिनंदन युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म जी से पूछा कि जिस सत्य धर्म की ऋषि मुनि देवता आदि महिमा गाते हैं उसका लक्षण अर्थात् स्वरूप क्या है, और कैसे प्राप्त होता है तथा प्राप्त होने से क्या लाभ है ? भीष्म पितामह ने उत्तर दिया:-

सत्यं नामाव्ययं नित्यमविकारि तथैव च।
सर्व धर्मा विरुद्धेन योगेनैतदवाप्यते॥

अव्यय नित्य, अविकारी पदार्थ को सत्य कहते हैं। वह समस्त धर्मों के विरोध से रहित योग द्वारा प्राप्त होता है। अविकारी रूप से सब वर्णों में विद्यमान है।

सत्यं सत्सु सदा धर्मः सत्यं धर्मः सनातनः।
सत्यमेव नमस्येत सत्यं हि परमा गतिः॥
सत्यं धर्मस्तपो योगः सत्यं ब्रह्म सनातनम्।
सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥

सत्पुरुषों में सदा सत्य रहता है और वही धर्म कहलाता है। सत्य ही सनातन धर्म है। इसीलिये सत्य को ही नमस्कार है। सत्य ही परम गति है सत्य ही धर्म है सत्य योग है, सत्य सनातन ब्रह्म है, सत्य उत्तम यज्ञ है। संक्षेप में कहा जाय तो सर्वस्व सत्य में समाया हुआ है।

"सत्य का यथार्थ लक्षण"

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

सत्य बोले प्यारा बोले और अप्रिय सत्य न बोले ना ही प्रिय असत्य बोले यह सनातन धर्म है। काणे को काणा कहना यद्यपि सत्य है परंतु इससे मनुष्य को सुख की जगह दुःख होता है। अतः यह सत्य नहीं, क्योंकि छल कपट रहित सुख दायक वचन सत्य है। सत्यासत्य का विवेचन करना बड़ा कठिन है इसका वास्तविक निर्णय तो मनुष्य श्रीगुरु द्वारा ही कर सक्ता है। क्योंकि धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है। अर्जुन जैसे परम भक्त भी इस विषय में मोहित होकर भगवान श्रीकृष्ण से पूछते हैं:-

किं कर्म किं कर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।

हे देव ! क्या कर्म है, क्या अकर्म है अथवा किस समय क्या करना चाहिये, कैसा वर्ताव बर्तना चाहिये कर्तव्य क्या है ? इस गहन विषय में कवि विद्वान जन भी मोहित अथवा भ्रम में पड़ जाते हैं।

परंतु मनुष्य अपने व्यवहार में "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्" का अनुसरण करें तो भी अपने धर्म का ठीक पालन कर सक्ते हैं। कहा भी है सत्य सम्पूर्ण धर्मों की जड़ है तथा श्रेष्ठ धर्मका लक्षण है यथा:-

"सत्यान्नास्ति परो धर्मः"

सत्य से बड़ा कोई धर्म नहीं है क्योंकि सत्य में सम्पूर्ण धर्मों का समावेश है तथा सत्य ही धर्म का मूल है यथा:-

"सत्यादुत्पद्यते धर्मः"

सत्य से धर्म उत्पन्न होता है सत्य भाषण तथा सद्व्यवहारी मनुष्य की वाणी श्रीरामचंद्र जी के अमोघ बाण की न्याई कभी निष्फल तथा अन्यथा नहीं होती है जो मनुष्य सत्य भाषण करते हैं। उन्होंने मानो सम्पूर्ण तप तपलिये हैं। क्योंकि सत्य से बढ़ कर न कोई तप है, न धर्म है और न आचार है। सत्य ही पवित्रता की नींव है। जो सत्य पथपर चलता है वह मध्यान्ह के सूर्य की भान्ति प्रकाश को पाता है। अपने आत्मा को बलवान व निर्भीक बनाने का मार्ग केवल सत्याचरण ही है। इसी से मनुष्य सबका आदर पात्र बन सक्ता है। सत्य वादी के हृदय में ईश्वर का निवास होता है, क्योंकि स्वयं भगवान् सत्यस्वरूप हैं। यथा:-

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या,,
सत्य बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय साच है ताके हृदय आप॥

और सत्यवादी अपनी आत्मापर पर्दा डाल कर कोई कपट दुराव तथा अन्य दुष्कर्म में कदापि प्रवृत्त नहीं होता है। और नहीं सत्य भाषी को कोई श्राप देसकता है अधिक क्या सत्यवादी से इंद्रादिक भी भयभीत रहते हैं।

सांचेश्राप न लागिये सांचे काल न खाय।
सांचे को सांचा मिला सांचे माहिं समाय॥

सांचे चोर चुराया घोड़ा,
परमेश्वर ताका रंग मोड़ा।
धर्म न दूसर सत्य समाना,
आगम निगम पुराण बखाना॥
गिरि सम होईं कि कोटिक गुंजा,
नहिं असत्य सम पातक पुंजा।
उपैति सत्यादानं हि तथा यज्ञाः सदक्षिणा।
त्रेताग्निहोत्रं वेदाश्च येचान्ये धर्म निश्चयाः॥

मनुष्य सत्य के प्रताप से दान तथा दक्षिणा सहित किये हुये यज्ञ एवं त्रेताग्नि होत्र वेदाध्ययन आदि सब प्रकार के धर्मों के फलों को प्राप्त होता है। सत्य से अनुराग करना एक ऐसा सद्गुण है जो मनुष्य की सहस्रों दुर्बलताओं को निवारण कर सक्ता है। जो मनुष्य सत्य के ग्रहण करने पर तत्पर रहते हैं उनका जीवन अमूल्य हो जाता है। अतः सत्य को धारण करो। सत्याचरण सर्वदा सीधा तथा परिणाम में सुखदाई है।

एक बार एक बहरे गूंगे से पूछा गया कि सत्य क्या है? उसने अपनी अंगुली सीधी करदी। फिर पूछा गया असत्य क्या है? तो उसने अपनी अंगुली को टेढ़ा कर दिया। स्मरण रक्खो सत्य सर्वदा सीधा है। झूठ सर्वथा टेढ़ा है। अतः सत्य अवश्य मेव भाषण करना चाहिये।

सतपत छोड़ो हे नरा सत छोड़े पत जाय।
संत की बाँधी लक्ष्मी फेर मिलेगी आय॥

हे मनुष्यो! सत्य नहीं त्यागना चाहिए सत्य के छोड़ने से पत (इज्जत) नहीं रहती है और बिना पत (इज्जत) के जीवन मृत्यु समान है यथा:-

सम्भावितस्य चाकीर्त्ति र्मरणादति रिच्यते।

यशस्वी पुरुष की अकीर्ति मृत्यु से अधिक है सत्य से बंधी लक्ष्मी यदि चली भी जाय तो पुनः आ जाती है जैसे कि राजा हरिश्चंद्र एक बार राज्य, स्त्री तथा पुत्र से रहित हो गए परंतु सत्य पर दृढ़ रहे तो सत्य के प्रभाव से राज्य, धन, स्त्री, पुत्र की पुनः प्राप्ति हो गई और उनका कीर्ति स्तम्भ आनंद दिवाकर अटल हो गया। और भी जो जो सत्य पर आरूढ़ हुए हैं उन्हीं की कीर्ति आज तक आकाश पाताल में छा रही है मनुष्य उन के गुण गान करके तथा उन की सत्य प्रतिज्ञायें पढ़ और सुन करके अपने हृदय को सत्य प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने को प्रोत्साहित करते हैं। बाल्मीकि रामायण में श्री रामचन्द्र जी कहते हैं:-

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा,
हिमवान् वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात् सागरो वेलां,
न च प्रतिज्ञामहं पितुः॥

चाहे चन्द्रमा लक्ष्मी को छोड़ दे, चाहे हिमालय हिम को त्याग दे, और चाहे सागर अपनी मर्यादा को त्याग दे परन्तु मैं पिता की आज्ञा मानना इस प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ूंगा।

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाँय पर वचन न जाई॥

महाभारत में भीष्म पितामह कहते हैं:-

परित्यज्यं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः।
यद्वाप्यधिकं एतेभ्यां नतु सत्यं कथंच न॥

मैं त्रिलोकी की सम्पत्ति और देवताओं में वास करने तक के भाव को छोड़ दूंगा। परंतु सत्य को कभी नहीं छोड़ूंगा। इसलिए कहा गया है कि सत्य से रहित कोई भी सफलीभूत नहीं होता है। यथा:-

सत्य हीना वृथा पूजा, सत्य हीना वृथा जपः।

सत्य से रहित पूजा, जप व्यर्थ हैं। जैसे कि ऊपर में बीज बोना व्यर्थ है इसी प्रकार सत्य के बिना शुभाचरण भी अपना यथेष्ठ प्रभाव नहीं दिखला सकते हैं। मनुष्य जप, तप, परोपकार और दानादि कर्म स्व तथा पर कल्याण और सुख के लिए करता है परन्तु सुख और हृदय की शान्ति सत्य के बिना प्राप्त नहीं होती। मनुष्य कुछ भी करे सत्य से युक्त होना चाहिए।

सत्येन वाति वातोयं सत्येन तपते रविः।
सत्येन धार्यते सर्वं सत्यं सारविदं जगत्॥
सत्येन पूयते साक्षी सत्येन धर्म वर्धते।
तस्मात् सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः

सत्य के प्रभाव से वायु चलती है सत्य से सूर्य तपता है और सत्य से यह सब कुछ धारण किया हुवा है। इस जगत् में सत्य ही सार है। सत्य से साक्षी पवित्र होती है, धर्म सत्य से बढ़ता है।

सत्यं वदत माऽसत्यं सत्यं धर्म सनातनः ।
हरिश्चन्द्र चरति वै दिवि सत्येन चन्द्रवत् ॥

हे मनुष्यो ! तुम सत्य बोलो असत्य मत बोलो, सत्य सनातन धर्म है। हरिश्चन्द्र सत्य ही से स्वर्ग को प्राप्त हुआ जैसेकि चंद्रमा आकाश में अपने सत्य से चलता है।

सत्यमेव जयते नानृतं ।
सत्येन पन्था विततो देवयानः ॥
येना क्रमन्त्यो ह्याप्त कामा ।
यत्रतत्सत्यस्य परं निधानम् ॥

सत्य ही की जय होती है। मिथ्या की नहीं होती। सत्य से ही देवयान नामक मार्ग का द्वार खुला हुआ है जिसके द्वारा तृष्णा के त्यागी पूर्णकाम ऋषि सत्य स्वरूप ब्रह्म के सनातन परम धाम को प्राप्त होते हैं वह सत्य ही है।

सत्येन लभते तपसा ह्येष आत्मा ।
सम्यग् ज्ञान ब्रह्मचर्येण नित्यम् ॥
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो ।
यं पश्यन्ति यतयः क्षीण दोषाः ॥

जो ज्योतिर्मय शुद्धात्मा शरीर के भीतर विराजमान है वह आत्मा सत्य भाषण जितेंद्रियता आदि गुणों ही के द्वारा प्राप्त हो सकता है।

नास्ति विद्या समं चक्षुर्नास्ति सत्यं समं तपः ।
सत्यं ब्रह्म तपः सत्यं सत्यं विसृज्यते प्रजाः ॥
सत्येन धार्यते लोकः स्वर्गं सत्येन गच्छति ।

विद्या के समान चक्षु नहीं है और सत्य के समान तप नहीं है। सत्य ही ब्रह्म है, सत्य ही तप है, सत्य ही संसार को उत्पन्न करता है, सत्य ही ने पृथिव्यादि लोकों को धारण किया है सत्य ही से स्वर्ग को जाते हैं। उपरोक्त श्लोक से ज्ञात हुआ कि इस जीवन में सत्यही सार है यदि मन में भी विचार कर देखें तो यही अनुभव होता है कि सत्य से विजय होती है, सत्य से कीर्त्ति होती है और सत्य से सुख प्राप्त होता है।

एक मनुष्य जो दान, जप तप करता है और असत्य भाषण करता है। और दूसरा मनुष्य चाहे और किसी शुभ कर्म में प्रवृत्त नहीं है परन्तु सब के साथ प्रेम पूर्वक सत्य भाषण करता है इन दो विपरीत प्रकृति वाले मनुष्यों में सत्य भाषण करने वाला ही प्रिय लगता है। क्योंकि यदि हम और कोई शुभ कर्म नहीं कर पाते हैं तो ईश्वर प्रदत्त हृदय तथा जिह्वा को भी असत्य बोल कर अपवित्र क्यों करें।

अपूर्ण

भजन

आज श्याम मोह लीनी बंसरी बजाय के ॥ टेक ॥
शिव समाधि भूल गई, सुर मुनिन की ताली ।
वेद भनित ब्रह्मा भूले, भूले ब्रह्मचारी ॥ १ ॥
रम्भा सब ताल चूकी, भूली नृत्य कारी ।
जमना जल उलटो चल्यो, सुधि सबन बिसारी ॥ २ ॥
वृंदावन में वंस बाजी, तीन लोक प्यारी ।
ग्वाल बाल मगन भये, ब्रज की सब नारी ॥ ३ ॥
सुन्दर श्याम मोहनी मूरत, नटवर बनवारी ।
सूर के श्याम मदन मोहन चरणन की बलिहारी ॥४॥

होरी २

कृष्ण ने कैसी होरी मचाई ॥ टेक ॥
एक समय श्री कृष्ण देव के, होरी खेलन मैं आई।
एकसे होरी मंचे नहीं कबहू, यासे करें बहुताई ॥
यही प्रभुने ठहराई ॥ १ ॥
पांच भूतकी धातु मिला के, अगड पिचकारी बनाई।
चौदह भुवन रंग भीतर भर के, नाना रूप धराई ॥
प्रगट भये कृष्ण कन्हाई ॥ २ ॥
पांच विषय की गुलाल बना के, बीच ब्रह्माण्ड उड़ाई।
जिन २ नैन गुलाल पड़ी री, सुध बुध सब बिसराई ॥
नहीं सूझत अपनाई ॥ ३ ॥
ब्रह्म ज्ञान अञ्जन की शलाका, जिसने नैन में पाई।
ब्रह्मानंद नैन तम नाशो, सूझपड़ी अपनाई ॥
भरम की धूल उड़ाई ॥ ४ ॥

होरी ३

म्हारे कौन खेले ऐसी होरी,
जामें आवागमन की डोरी ॥ टेक ॥
श्रवण सुन्यो नयनन नहीं देख्यो,
पिया पिया लागि डोरी।
पन्थ निहारत जन्म बिसारयो, (सिरान्यो)
परगट मिल्यो नहीं चोरी ॥ १ ॥
एकन कूं मृगछाला ओढ़ी,
एक न कूं गुदड़ी जोरी।
बहुत वेष भर सांग बनाया,
लोगों को लागै ठगोरी ॥ २ ॥
जगन्नाथ बदरी रामेश्वर,
चारों धाम फिरोरी।
अठसठ तीरथ पृथिवी परकम्मा,
और पुष्कर लट बोरी ॥ ३ ॥
चार वेद और छहों शास्त्र,
भगवद्गीता पढ़योरी।
कहैं कबीर सतगुरु की दया बिन,
तेरो भरम मिटै ना बोरी ॥ ४ ॥

४

जोगी जन वही जाके मन ही में माला ॥ टेक ॥
हाथ न हाले जीभ न चाले,
जरा नहीं होगा वाके तनकूं कसाला ॥ १ ॥
नाभि नासिका एक मिलावे,
गुरु चाल से खोले ताला ॥ २ ॥
जाकर बैठे भंवर गुफा में,
तब भागे मन का भ्रम जाला ॥ ३ ॥
दशवें द्वार हो बाजा बाजै,
कहै कबीर सोही होत निहाला ॥ ४ ॥

५

करो विद्या प्रचार जो सुख सम्पति चाहो ॥ टेक ॥
विद्या बुद्धि को बढ़ावे, यह मन का तिमिर हटावे।
ज्ञान का है भण्डार ॥ १ ॥
विद्या है मनुष्य का भूषण, है सबसे उत्तम यह धन।
मनमें करो विचार ॥ २ ॥
इसको नहीं चोर चुरावे, नहीं राजा बांट बटावे।
करो चाहे यतन हजार ॥ ३ ॥
पुजे अपने देश में राजा, पर विद्वान पुजे हरजा।
होवे आदर सत्कार ॥ ४ ॥
गुरुओं का भी यह गुरु है, नर इसके बिना पशु है।
गौर कर देखो यार ॥ ५ ॥
यह यश और कीर्ति बढ़ावे, और आदर मान करावे।
बना देवे सरदार ॥ ६ ॥
सत्य धर्म को यह बतलावे, और ब्रह्म धाम पहुंचावे।
खोले मुक्ति का द्वार ॥ ७ ॥
विद्या की है यह माया, दी पलट देश की काया
चला दिये रेल और तार ॥ ८ ॥
कल और मशीन हुई जारी। जो लेगई दौलत सारी।
खींच कर सागर पार ॥ ९ ॥
यह अद्भुत कला और कौशल, हैं सब विद्याही के फल।
जानै है संसार ॥ १० ॥
कहै मानिग यह पढ़ो पढ़ावो, और विद्यालय खुलवाओ
देश का करो सुधार ॥ ११ ॥

६

दीनों पर दया करोरे, गौमाता कहे रंभाय के ।।टेक।।
दूध दही और घी खाते हो, मावे तकते हर्षाते हो ।
बल बढ़ मोठे हो जाते हो, बड़े बड़े सुख पाय के ।।
दुःख सागर से उतरोरे ।। १ ।।
गोबर से चौके लगवालो, कण्डों को अग्निमें जलालो ।
मूत्र से उम्दा दवा बनालो, रोगों पर अजमाय के ।
मत मांस से पेट भरोरे ।। २ ।।
मरती बार चरम दे जावें, चर्म ढोल जूते बनवावें
फिर भी हम पर तेग चलावें, न्याय नीति बिसरायके ।
ईश्वर से जरा डरोरे ।। ३ ।।
सुत हमारे हल रुत में चाजें, मेवामिठाई अन्न कमाजें ।
रंक राव प्रजाको पालें, अपना जोर लगाय के ।।
फिर भी क्यों प्राण हरोरे ।।४ ।।
गाड़ी तोप रथों में चलते, राजों के भी काम निकलते ।
फिर भी कुकर्म से ना टलते, मारत हो तड़पाय के ।।
गले पर ना छुरी धरोरे ।। ५ ।।
तृण घास की चरने वाली, जगकी रक्षा करने वाली ।
बिना खता के मरने वाली, वृथा मूंड कटाय के ।
बिन मौत से मार मरोरे ।। ६ ।।
हे राजन! मेरी अर्जके ऊपर, कीजो गौर गरज़ के ऊपर
धीस राम फर्ज के ऊपर, गाता छंद बनाय के ।
अधरम से अलग टरोरे ।। ७ ।।

७

तेरो मुख चन्द्र चकोर मेरे नैना ।। टेक ।।
पलहूं न लागे पलक बिन देखें,
भूल गये नल पलहूं लगैना ।।
हूबैरात मिलने को निशिदिन,
ऐसे मिले मानों कबहूं मिलैना ।।
भगवत रसिक रसकी यह बातें,
रसिक बिना कोई समझैना ।।

संसार समाचार

फ्रांस में मेडवेली नाम की एक स्त्री है, जिसके दाढ़ी और मूंछ दोनों हैं । वहांवाले आजकाल उस पर टिकट लगाकर खूब पैसा पैदा कर रहे हैं । उसे देखने के लिये दर्शक और फोटो लेने के लिये फोटोग्राफर दूर दूरसे आते हैं ।

अभी हाल में एक ऐसे लेटर बक्स- का आविष्कार हुआ है कि जिसमें चिट्ठी डाल दीजिये और जितनी कीमत का आप उस पर टिकट लगाना चाहते हैं उतने दाम भी चिट्ठी के साथ ही डाल दीजिये तो उतने ही दामों का टिकट उस चिट्ठीपर अपने आप लग जावेगा और चिट्ठी लेटर बक्स के भीतर गिर पड़ेगी ।

आस्ट्रेलियाके एक जंगलमें एक ऐसा पेड़ है जिसकी ऊंचाई ४०० फुट है यानी कुतुब मीनारकी ऊंचाई से दुगनीके करीब है ।

विज्ञान वालोंने पता लगाया है कि दीमक वर्षोंमें एक मासतक ८००० अण्डे प्रति दिनके हिसाब से देती है ।

अंगरेजी के साहित्य- भण्डार में प्रति वर्ष ३००० हजार के करीब शब्दोंका योग होता है जिनमें से अधिकांश विज्ञान के या इसीके समान साहित्य से बनते हैं ।

रूस-देशमें एक फोटो खींचने वाली मशीन का नया अविष्कार हुवा है । इस मशीनके पास जाने और एक आना डालने पर उसमें से हरएक मनुष्य अपना चित्र पा सकता है इसमें आठ प्रकार के फोटू बनसकते हैं इसका आकार प्रकार स्टेशनों पर लगी हुई प्लेटफार्म टिकट बेचनेवाली मशीनों जैसा है ।

निम्न लिखित महानुभावों ने भक्ति के संरक्षक बन कर भक्ति को अपनाने की कृपा की है।

१. राय साहब श्री बल्लभ प्रसाद जी रईस आनरेरी मजिस्ट्रेट गुलजारबाग़, पटना १०१)

२. राय बहादुर ला० बनारसीदास जी रईस, मिल ओनर अम्बाला १०१)

३. श्रीमान् भाई नारायण सिंह जी हीरामण्डी लाहौर १०१)

४. राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा ५१)

५. श्रीमान् राय भाई गनेशीलाल जी आरमी मिनिस्टर अलवर राज्य ५१)

६. राव श्रीराम रईस नांगल २५)

७. म० शोभाराम जी डूंगरवास २५)

८. चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी २५)

९. राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास २५)

१०. बा० स्वयम्बरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्ज़ पटना यू०पी०। २५)

११. श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी ओ० बी० ई० जागीरदार रामपुरा रेवाड़ी। २५)

१२. सेठ बनवारी लाल जी लोहिया, चावड़ी बाज़ार दिल्ली। २५)

१३. चौ० नेतराम साहब गिरदावर हलका जाटूसाना जिला गुड़गाँवा। २५)

सहायक।

१. पं० मूलचन्द जी प्रेसीडेंट म्यूनिसपल कमेटी पलवल। ११)

२. श्रीमती उमरावकौर धर्मपत्नी राव जगमालसिंह जी रईस नांगल ११)

३. महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। ५)

४. बा० ब्रजलाल जी शिरस्तेदार प्राईवेट सेक्रेटरी आफिस संगरूर, जींद। ५)

५. राव बलवन्तसिंह जी मु० जैतपुर तहसील रेवाड़ी। ५)

६. श्रीमती सूरज देवी धर्म पत्नी चौ० ज़ोरावरसिंह जी शिशन जज अलीगढ़। ५)

७. चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपताना ५)

८. श्रीमान् पं० जयराम जी शर्मा 'गौड़' क्लार्क इलाहाबाद बैंक देहली। ५)

९. ला० बनारसी दास जी, अकाउण्टेण्ट हजूरी, संगरूर। ५)

१०. ला० भगवान दास जी, आडिट क्लर्क सैक्रेटरी इजलास खास आफिस संगरूर ५)

बिना गुरु के सिद्धान्त कौमुदी।

भाषाफक्किका प्रकाश ॥

इस पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा में तथा प्रश्नोत्तर के रूप में सिद्धान्त कौमुदी की गूढ़ फक्किकाओं को समझाया गया है। विद्यार्थियों के बड़े लाभ की पुस्तक है इस से विद्यार्थी पढ़ कर स्वयं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ सकते हैं। मूल्य केवल ।।)

ज्ञानधर्मोपदेश।

इस छोटी सी पुस्तक में वेद शास्त्र तथा धर्म का सार संगृहीत है और वेदान्त की उत्तमोत्तम कविताओं का संग्रह है। मूल्य -)।।।

वेदोपनिषत्।

इस पुस्तक में ईश, कठ, केन, मुण्डक, और माण्डूक्यादि उपनिषदों तथा वेदों के उत्तम मन्त्रों का अर्थ सहित संग्रह है। मूल्य ।-)

अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला।

इस पुस्तक में गीता और उपनिषदों से १०८ बहुत ही उत्तम श्लोकों का संग्रह है। नित्य पाठ करने की पुस्तक है। मूल्य -)।

भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता।

इस पुस्तक में प्रथम मूल है तत्पश्चात् अन्वय तथा सरल संस्कृत में प्रत्येक मूल के पर्याय फिर सरल हिन्दी भाषानुवाद है। यह गीता के जिज्ञासु तथा कण्ठस्थ करने वालों के बहुत ही लाभ की पुस्तक है पृष्ठ संख्या ४२६ होने पर भी हमने भक्त जनों के हितार्थ मूल्य केवल ।।=) रक्खा है शीघ्रता कीजिये केवल १००० ही प्रतियाँ हैं जिन के अति शीघ्र ही निकल जाने की आशा है।

सत्य शब्द संगृह।

इस पुस्तक में महात्माओं की उत्तम २ वाणियों का संग्रह है। वेदान्त विषय की उत्तम कोटि की कवितायें कवित्त तथा सवैये हैं। अन्त में विचार सागर है। यह भक्त जनों के नित्य पाठ की बड़ी ही उत्तम पुस्तक है मूल्य ।=)

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति मेरु" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।